शासन सम्राट : जीवन परिचय

लेखक :

श्री रमणलाल ची. शाह (मुंबई)

अनुवादक :

डॉ. प्रीतम सिंघवी

Pārśva International Series - 10

शासन सम्राट : जीवन परिचय

लेखक :
श्री रमणलाल ची. शाह (मुंबई)

अनुवादक :
डॉ. प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक :
पार्श्व इन्टरनेशनल शैक्षणिक और शौधनिष्ठ प्रतिष्ठान
अहमदाबाद
१९९९

वि.सं. २०५५ अमदावाद दिपावली : ।

Pārśva International Series - 10

शासन सम्राट : जीवनपरिचय

Publisher :

Dr. S. S. Singhvi
Managing Trustee
Parsva International Educational and Research Foundation,
4-A, Ramya Apartment, opp. Ketav Petrol Pump,
Polytechnic, Ambawadi, Ahmedabad-380015

Price : Rs. 20

Copy ; 750

प्राप्तिस्थान सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोल, अहमदाबाद-३८०००१
फोन : ५६५६६९२

Printed by : Rakesh H. Shah
Rakesh Computer Centre
272, Celler, B.G. Tower,
Delhi Gate, Ahmedabad - 380 004
Phone : 6303200

अनुवादके अवसर पर.....

महापुरुष के जीवन चरित्र प्रेरणा के स्त्रोत होते है। शासन सम्राट श्री नविजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज का जीवन साहस-शौर्य और सफलता से हरा भरा है। ऐसे तो यह संक्षिप्त चरित्र गुजराती में मुंबइ के प्रोफेसर श्री रमणलाल ची. शाह ने लिखा है। वह काफी सरल सुगम है। हिन्दी भाषी सज्जनों के लिये डाक्टर श्रीमती प्रीतम सिंघवी ने बडी तेजी से इस पुस्तिका का सुवाच्य शैली में हिन्दी अनुवाद कर दिया। यह कार्य निन्तात सराहनीय है।

यह पुस्तक से विशालवर्ग जो हिन्दी भाषी है वह अवश्य लाभान्वित होंगेही, ऐसी आशा नहीं अपितु श्रध्धा है।

ऐसे प्रभावक शिरोमणि महापुरुष के जीवन परिचय से नई पीढी वह उत्तम मार्ग प्रति दृष्टिपात करें इस शुभभावना के साथ -

ओपेरा- जैन उपाश्रय **प्रद्युम्नसूरी**

अमदावाद-७

आसो पूर्णिमा-२०५५

श्री विजयनेमिसूरि महाराज

विरल व्यक्तित्व, विरल जीवन :

विक्रम की २०वीं सदी में हुए जैनाचार्यों में 'सूरिचक्र चक्रवर्ती' का जिन्हें बिरूद दिया गया है ऐसे प.पू. श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज साहब का जीवन-वृतान्त अनेक घटनाओं से पूर्ण, रसपूर्ण और प्रेरणादायी है । पृथ्वी को प्रकाशित करने के लिए जैसे कोई ज्योतिपुंज अवतरित हुआ हो उनका जीवन ऐसा पवित्र है । बाल-ब्रह्मचारी महात्मा ने ब्रह्मचर्य की साधना मन, वचन और काया से इसप्रकार अखंड और अनवरत की कि उनका गेहूँआ श्यामल तन दीप्त हो उठा । उनकी मुखकांन्ति इतनी आकर्षक और प्रतापी थी कि उन्हें देखते ही मनुष्य प्रभावित हो जाय । उनके नयनों से अनराधार करुणा बहती थी । फिरभी उनके नयनों मे वात्सल्यपूर्ण वशीकरण की असीम शक्ति थी। ऐसा ज्योतिपुंज उनके नयनों में था कि सामान्य मनुष्य को उनसे दृष्टि मिलाने में ग्लानि का अनुभव होता था ।

प.पू. श्री विजयनेमिसूरि महाराजश्री के जीवन की एक घटना आश्चर्यजनक है । उनका देहावतरण और विसर्जन (देहोत्सर्ग) उसी भूमि उसी तिथि, उसीदिन और उसी घडी मे हुआ था ।

वर्तमान समय में जैनों के चारों समुदायों में यदि किसी आचार्य महात्मा के शिष्य प्रशिष्यों का व्यापक समुदाय है तो विजयनेमिसूरिजी का जिन्होंने अपने दादागुरु के दर्शन नहीं किए ऐसे तीसरी चौथी, पीढ़ी के अनगिनत शिष्य 'नेमिसूरिदादा' शब्द उच्चरित

कर हर्षविभोर हो जाते हैं । इतने से ही उन संत - शिरोमणि का पवित्र जीवन कितना सुवासित और दूरगामी होगा उसकी प्रतीति होती है ।

'शासन सम्राट' का योगदान :

'शासन सम्राट' के बिरुद को केवल सार्थक करने वाले नहीं, किन्तु विशेषण की शोभा बढानेवाले तीर्थोद्धार, तीर्थरक्षा, उपधान ६ 'री' पालक संघ,[१] जीवदया, घर्मशाला, पाठशाला, उपाश्रयों इत्यादि कार्यों में अधिक और महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले, विद्वान शिष्य तैयार करनेवाले, ज्ञानभंडारों को सुव्यवस्थित करनेवाले, सिद्धचक्र पूजन, अर्हन्तपूजन जैसे भूलादिए गए पूजनों को विधि-विधान और शास्त्र संगत ढंग से पुनर्प्रचलित करानेवाले, पिछले ढाई सौ वर्ष के दरम्यान योगाद्वहन पूर्वक होनेवाले प्रथम आचार्य पूज्य श्री विजयनेमिसूरिजी का जितना विशाल शिष्य समुदाय था उतनाही श्रावक समुदायभी था । इसीलिए उनके हाथों से एक समय में लाखों रुपयों के कार्य जगह - जगह पर सुव्यवस्थित ढंग से हुए । जिसके प्रभाव का अनुभव आज तक हो रहा है ।

जन्म कुंडली :

पू. नेमिसूरिजीमहाराजश्री का जन्म वि.सं. १९२९की कार्तिक सुद प्रतिपदा(एकम) के दिन सौराष्ट्र के महुवा गांव में हुआ था । नूतन वर्ष के पवित्र पर्व के दिन पुत्र होना किसी भी परिवार के

१. ६ 'री' पालक संघः- सम्यक्त्वधारी, पादचारी, एकाशनकारी, सचित परिहारी,. ब्रह्मचारी, भूमिसंस्तारकारी इन ६ प्रकार 'री वाले यात्रियों को ६ 'री' पालक यात्रसंघ कहते हैं ।

लिए अत्यंत आनंद की बात होती है । उनके पिता लक्ष्मीचंदभाई और माता दिवाली बहन के आनंद की सीमा न थी । दिपावली-पर्व के बाद दूसरे दिन नूतन वर्ष आता है । दिवाली बहन का नाम भी एक तरह से सार्थक हुआ । उसमें भी कोई शुभ शकुन रहा होगा । बालक जन्म के पश्चात लक्ष्मीचंदभाई ने महुवा के विद्वान ज्योतिषी श्री विष्णुभाई भट्ट को बुलाया । जन्म समयकी जानकारी देकर जन्मकुंडली बनाने को कहा । बाद में लक्ष्मीचंदभाई उनके घर बालक की कुंडली लेने गए । ज्योतिषी भी उस कुंडली से आश्चर्यचकित हुए थे । उन्होने कहा 'यह तो कोई उच्चकोटि की कुंडली है । आपके पुत्र का जन्म-लग्न कुंभ लग्न है । जिस व्यक्ति का जन्म कुंभ लग्न में हो वह व्यक्ति महान साधु होता है । ऐसा हमारा ज्योतिषशास्त्र कहता है । जोषी (ज्योतिषियों) में कहा जाता है- कुंभ लग्न का पुत्र होवे बड़ा अवधूत' । अतः आपका पुत्र बडा होकर जैन साधु बनेगा, कुंडली देखकर मुझे यह संभावना लगती है ।

यह सुनकर लक्ष्मीचंद भाई के आनंद की कोई सीमा न रही । घर आकर परिवार के लोगों से उन्होंने बात की, तो घर में हर्ष का वातावरण छा गया । पालने में सोये बालक को सभी लाड-प्यार से बुलाने लगे ।

शालाप्रवेश :

बालक का नाम राशि के अनुसार नेमचंद रखा गया । लक्ष्मीचंदभाई के दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ थी । बालक नेमचंद के

जन्म से अब छ संतान हो गए । नेमचंद के बडा होने पर उसे पाठशाला में बैठाने का समय आया । लक्ष्मीचंदभाई को इसबात का बहुत उत्साह था । इसके लिए उन्होंने शुभदिन और शुभ घडी की जानकारी की । धामधूम से उस दिन वे स्वयं बालक नेमचंद को प्राथमिक पाठशाला में ले गए । नेमचंद को पाठशाला में बैठाने के उपलक्ष में शिक्षकों और विद्यार्थीयों को मिठाई बाँटी गई । इस देहाती पाठशाला के प्रमुख शिक्षक भयाचंदभाई नामक सद्‌गृहस्थ थे । वे बच्चों को वर्णमाला और गिनती सिखाते थे । पहले ही दिन से भयाचंदभाई को इस बात का विश्वास हो गया था कि पाठशाला के बच्चों में नेमचंद बहुत तेजस्वी छात्र था ।

देहातीशाला का अभ्यास पूर्ण होने पर नेमचंद को हरिशंकर मास्टर के विद्यालय में रखा गया । हरिशंकर मास्टर पढ़ाने में बहुत होशियार थे । वे गुजराती में सात पुस्तक शिक्षा देते किन्तु उनका शिक्षण इतना सचोट होता कि विद्यार्थी जीवनभर उसे न भूले । उन दिनों दो प्रकार की शालाऐं थी (१) गुजराती (वर्नाक्युलर) (२) अंग्रेजी - गुजराती चौथी कक्षा के बाद होंशियार विद्यार्थी अंग्रेजी विद्यालय में प्रवेश लेते थे । नेमचंद पढने में बहुत तेजस्वी थे । अतः कुछ शिक्षकों ने ऐसी सिफारिश की कि उन्हें अंग्रेजी पाठशाला में रखा जाय । इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लक्ष्मीचंदभाई ने बालक नेमचंद को पीतांबर मास्टर की अंग्रेजी पाठशाला में बैठाया । नेमचंद ने अंग्रेजी पाठशाला में तीन वर्ष तक अभ्यास किया । तत्पश्चात उन्होंने महुवा

के मोनजीभाई जोशी नामक एक ब्राह्मण पंडित से संस्कृत का थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया । इस प्रकार जैसे अभ्यास बढ़ता गया उनकी ज्ञान-जिज्ञासा जागृत होने लगी ।

आगे अभ्यास :

किशोर नेमचंद का गुजराती सात पुस्तक और अंग्रेजी तीन पुस्तक तक का अभ्यासपूर्ण होने पर पिताश्री लक्ष्मीचंदभाई ने विचार किया कि नेमचंदभाई को व्यापार रोजगार में लगाना चाहिए । महुवा में श्री करसन कमा की आढ़त चलती थी वहीं किशोर नेमचंदभाई को नोकरी मे लगवा दिया । नेमचंदभाई उस काम में भी प्रवीण होगए । किन्तु अभ्यास और प्रभुभक्ति में जितना आनंद आता था उससे कम आनंद व्यापार मे आता था । पन्द्रह वर्ष के किशोर नेमचंदभाई दृढ आत्मविश्वास वाले, बुद्धिशाली, विवेकी और विनम्र थे उनकी और अधिक पढने की लालसा देखकर लक्ष्मीचंद भाई ने विचार किया कि भावनगर में.पू. श्री वृद्धिचंदजीमहाराज विद्यार्थिओं को संस्कृत भाषा-साहित्य और धार्मिक सूत्र पढाते हैं तो नेमचंदभाई को भावनगर भेजना चाहिए । उन्होंने पत्र लिखकर पू. श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज की संमति प्राप्त की और साथ देखकर एक शुभदिन नेमचंदभाई को विद्याभ्यास के लिए भावनगर भेजा ।

किशोर नेमचंदभाई पिता की आज्ञा लेकर पू. श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज से संस्कृतभाषा और धार्मिक अभ्यास करने के लिए भावनगर आ पहुंचे । भावनगर के उपाश्रय में आकर उन्होंने अपने आगमन

की सूचना महाराजश्री को दी । अतः महाराजश्री ने उनके लिए व्यवस्था करदी और कहा कि 'भाई नेमचंद तुम्हारे स्नान-भोजन की व्यवस्था शेठ जशराजभाई के यहा की गई है और दिन-रात रहना यहाँ उपाश्रय में है बोलो तुम्हें स्वीकार है ? नेमचंदभाई ने इस बात के लिए तुरंत संमति देदी ।

वैराग्यका रंग :

उसी दिन से उनका अभ्यास प्रारंभ हो गया । जैसे-जैसे वे अभ्यास करते गए वैसे - वैसे उन्हें उसमें और जिज्ञासा बढ़ती गई । इतना ही नही त्याग - वैराग्य का रंग भी उन्हें लगता चला गया । एकबार रात के समय विचार करते हुए उन्हें लगा कि "घर संसार से साधुजीवन कितना उत्तम है" उनकी इस भावना को उत्तरोत्तर पोषण मिलता रहा, वह इस सीमा तक कि दादीमा (पितामही)के निधन के समाचार पिताने दिए तब महुवा जाने के बदले उन्होंने पिताश्री को संसार की क्षणभंगुरता का बोध करवाते हुए पत्र लिखा । इस पत्र से पिताश्री को आशंका हुई कि कहीं नेमचंदभाई दीक्षा न ले ले । अतः गलत बहाना बनाकर नेमचंदभाई को फौरन महुवा बुला लिया ।

महुवा आते ही नेमचंदभाई पिताश्री की यह युक्ति समझ गए । किन्तु अब कोई दूसरा उपाय न था । पिताश्री ने उन्हें पुनःभावनगर जाने के लिए मना कर दिया । एक दिन नेमचंदभाई ने अपने मित्र से बात करते हुए कह दिया कि वे दीक्षा लेनेवाले हैं । यह बात

पिताश्री लक्ष्मीचंद ने जानी तो उन्होंने नेमचंदभाई के इधर-उधर आने-जाने पर कड़ा पहरा लगा दिया । इससे नेमचंदभाई की उलझन बढ़गई। लक्ष्मीचंदभाई को लगा कि पुत्र नेमचंद का दीक्षाग्रहण करने का विचार दृढ है, किन्तु अभी कच्ची उम्र के और वह नासमझ है । कुछ बातें घर के स्वजनों की अपेक्षा कोई अन्य समझाए तो उसका प्रभाव अधिक होता है । अतः लक्ष्मीचंदभाई ने अपने एक मित्र रूपशंकरभाई से आग्रह किया कि वे नेमचंद को समझाए । रूपशंकरभाई ने एक दिन नेमचंदभाई को अपने घर बुलाकर बात ही बात में समझाने की कोशिष की किन्तु वे असफल रहे । रूपशंकरभाई को विश्वास हो गया कि नेमचंदभाई दीक्षा लेने के अपने विचार में दृढ है । फिरभी महुवाके न्यायाधीश यदि समझाएँ तो अधिक प्रभाव पडेगा । लक्ष्मीचंदभाईसे पूछकर वे नेमचंदभाई को न्यायाधीशके घरले गए । न्यायाधीश ने साम, दाम, भेद और दंड हर तरह से नेमचंदभाई को समझाने का प्रयत्न किया और धमकी दी कि यदि वे दीक्षा लेंगे तो उनकी धरपकड कर उनके हाथ-पांव में बेडी पहनाकर उन्हें कैद में बंद कर दिया जाएगा । किन्तु न्यायाधीश ने देखा ऐसी धमकियों का इस किशोर पर कोई प्रभाव न था । इतना ही नही किन्तु किशोर का प्रत्येक उत्तर तर्कयुक्त बुद्धिगम्य, सत्य और सचोट था । अतः जब वे वापस लौट रहे थे तब न्यायाधीश ने रूपशंकरभाई को किनारे ले जाकर बताया कि यह लड़का किसी भी तरह दीक्षा लिए बिना नहीं रहेगा ।

दीक्षार्थी का गृह त्याग :

एक ओर लक्ष्मीचंदभाई ने नेमचंदभाई पर कठोर नियंत्रण लाद दिए थे तो दूसरी ओर नेमचंदभाई गृहत्याग का मौका ढूंढ रहे थे । गांव में पितृविहीन एक किशोर दुर्लभजी को दीक्षा लेने की इच्छा थी । अतः नेमचंदभाई ने उससे मित्रता की । महुवा से भागकर भावनगर कैसे पहुंचे वे दोनों इसका उपाय ढूंढ रहे थे । उन दिनों नजदीक के स्थानों पर लोग चलकर जाते थे । दूर जाना हो तो गाडा (बहली), ऊंट, घोडा, इत्यादि का उपयोग करते थे । गांव में कोई जान न पाए इस तरह वे दोनों किशोर भागना चाहते थे । उन्हें भावनगर जल्दी पहुंचना था । अतः गांव की सीमा पर कब्रस्तानके पास रहनेवाले एक ऊंटवाले से भावनगर जानेकी व्यवस्था की । दूगना किराया लेने की शर्त पर ऊंटवाला आधीरात को जाने के लिए तैयार हुआ ।

रात के समय नेमचंदभाई बहाना बनाकर घर से निकल गए और दुर्लभजी के घर पहुंचे, और फिर दोनों ऊंटवाले के पास पहुंचे । ऊंटवाले ने तुरन्त निकलने से इन्कार कर दिया और कहा कि वह मुँहअंधेरे चार बजे निकलेगा । इन दोनों किशोरों के लिए चिंता का प्रश्न यह था कि इतना समय कहां व्यतीत करें ? पुनः घर जाने का कोई अर्थ नहीं है । अतःवे करीब के कब्रस्तान में सारी रात बैठे रहे । प्रातः चार बजे उन्होंने ऊंटवाले को उठाया । थोडी आनाकानी के बाद ऊंटवाला उन्हें लेजाने के लिए सहमत हो

गया वे दोनों ऊँट पर सवार हुए । ऊँट पर बैठने का उनका यह पहला अनुभव था । ऊँट की सवारी हड्डियां दुखानेवाली होती है । अतः वे जब आधे रास्ते तक पहुंचे तो थककर चूर हो गए । रास्ते में एक नदी पार करने का भी साहस करना पडा था । रात होने पर एक फकीर की कुटिया में उन्हें विश्राम करना पडा । दूसरे दिन तलाजा, भडीभंडारिया, इत्यादि गांवों से होते हुए वे आगे बढ़े । रास्ते में किसी श्रावक के यहां स्नानभोजन की व्यवस्था भी करली । इस तरह वे भावनगर पहुंचे । ऊँटवाले को किराया चुकाया और वे शेठ जशराजभाई के घर गए । वे दोनों दीक्षा लेने की भावना से महुवा से भागकर आए हैं, यह बात जशराजभाई को बताई । जशराजभाई ने भोजन द्वारा उनका आतिथ्य सत्कार किया और बाद में वे उन दोनों को वृद्धिचंद्रजी महाराज के पास ले गए वृद्धिचंद्रजी के समक्ष उन दोनों ने दीक्षा लेने का प्रस्ताव रखा । किन्तु वृद्धिचन्द्रजी महाराज ने कहा कि माता-पिता की अनुमति के बिना वे किसी को दीक्षा नहीं देते ।

दुर्लभजीभाई के पिता न थे और माता को विशेष विरोध न था अतः उन्हें दीक्षा देना वृद्धिचंद्रजी महाराज ने स्वीकार किया किन्तु नेमचंदभाई को दीक्षा देने से स्पष्ट इन्कार करदिया ।

स्वयं साधुवेश ग्रहण :

उचित मुहूर्त देखकर वृद्धिचंद्रजी महाराज ने दुर्लभजीभाई को विधिपूर्वक दीक्षा दी । नेमचंदभाई उपाश्रय में रहते थे और जशराजभाई

के यहां भोजन के लिए जाते थे । माता पिता की अनुमति लेने के लिए उन्हें पुनः महुवा जाने की इच्छा न थी क्योंकि वे जानते थे कि उन्हें अनुमति नहीं मिलने वाली है । अतः वे द्विविधा में पड गए और कोई मध्यम मार्ग विचार रहे थे । ऐसे भी वे बुद्धिशाली थे । अतः उन्होंने एक निराला मार्ग सोचा । उपाश्रय में वृद्धिचंद्रजी महाराज के रत्नविजयजी नामक एक शिष्य थे वैयावच्च (हर प्रकार सेवा करके) करके नेमचंदभाई ने उन्हें प्रसन्न कर लिया । तत्पश्चात उनसे साधु के वस्त्र मांगे और समझाया कि गुरुमहाराज मुझे दीक्षा नहीं देते अतः स्वतः साधु के वस्त्र पहनना चाहता हूँ । इस संदर्भ में आप की कोई जिम्मेदारी नहीं हैं । ऐसा कहकर साधु के वस्त्र नेमचंदभाई ने पहन लिए किन्तु ओघा कहां से लाया जाय ? उपाश्रय में स्वर्गस्थ गच्छनायक श्री मूलचंदजी महाराज का ओघा संभालकर रखा गया था । वह ओघा नेमचंदभाई ने रत्नविजयजी से प्राप्त कर लिया । तत्पश्चात वे वृद्धिचंद्रजी महाराजके पास साधुवेश में आकर खडे होगए । वृद्धिचंद्रजी उन्हें देखकर चकित रह गए उन्होने पूछाः 'अरे नेमचंद तुझे दीक्षा किसने दी ? नेमचंदभाई ने कहा गुरुमहाराज मैंने स्वयं ही साधु-वेश पहन लिया है और वह अब मैं छोडनेवाला नहीं हूँ । अतः आप मुझे अब दीक्षा की विधि करवाइए ।

दीक्षा विधि :

वृद्धिचंद्रजी महाराज द्विधा में पड गए । परिस्थिति का अनुमान लगाते हुए उन्हें लगा कि अब दीक्षा कर लेना ही उचित

है । वृद्धिचन्दजी महाराज ने दीक्षा विधि पूर्ण की और नेमचन्दभाई का नाम नेमविजयजी रखा । इस प्रकार से वि.स. १९४५ की जेठ सूद ७ के दिन नेमचन्दभाई मुनि नेमिविजयजी बन गए ।

माता पिता की व्यथा, समझाने का प्रयत्न :

इस ओर महुवा में मालूम हुआकि नेमचंदभाई और दुर्लभ ऊँट पर बैठकर भावनगर भाग गए हैं । अतः लक्ष्मीचंद द्विविधा में पड गए । माताश्री दिवालीबहन घर के स्वजन रोने लगे । लक्ष्मीचंदभाई ने सोचा कि यदि नेमचंदभाई ने दीक्षा न ली हो तो उन्हें रोक कर पुनः घर ले आना चाहिए । लक्ष्मीचंदभाई और दिवालीबहन महुवा से भावनगर जाने के लिए निकले । उन दिनों शीध्र यात्रा संभव न थी । थोडे दिन में लक्ष्मीचंदभाई भावनगर आ पहुंचे उन्होंने उपाश्रय में आकर देखा कि पुत्र नेमचंदभाई ने दीक्षा लेली है । वे क्रोधित हुए वाद-विवाद हुआ । वृद्धिचंद्रजी महाराज और मुनि नेमिविजयजी ने संपूर्ण शांति और स्वस्थता धारण की । लोग एकत्रित हो गए। बहुतो ने लक्ष्मीचंदभाई को समझाया किन्तु वे न माने । वे बाहर गए और भावनगर के मेजिस्ट्रेट को लेकर उपाश्रय में आए और अपने पुत्र को पुनः प्राप्त करने का प्रस्ताव रखा । मेजिस्ट्रेट ने मुनि नेमिविजयजी की हरतरह से उलट-तपास की । अंत में लक्ष्मीचंदभाई से कहा कि इस लडके को बलजबरी से दीक्षा नहीं दिलाई गई । उसने स्वयं अपनी इच्छा से दीक्षा ली है । अतः राज्य इस संदर्भ में कानूनन कुछ नहीं कर सकता । इस बात से लक्ष्मीचंदभाई निराश

हो गए । तत्पश्चात मुनि नेमिविजयजी तथा गुरुमहाराज श्रीवृद्धिचंद्रजी ने उन्हे बहुत समझाया अंतः वे शांत हुए और परिस्थिति को स्वीकार कर महुवा वापस चले गए ।

शास्त्राभ्यास :

मुनि नेमिविजयनी ने गुरुमहाराजश्री वृद्धिचंद्रजी से शास्त्राभ्यास प्रारंभ किया गुरुमहाराज ने देखाकि नेमिविजयजी बहुत तेजस्वी हैं । उनकी स्मरण शक्ति और ग्रहण-शक्ति बहुत अच्छी है । वे श्लोक भी शीघ्र कंठस्थ कर लेते हैं और उनके साथ वार्तालाप में भी उनके विचारों की प्रस्तुति विशद और क्रमबद्ध होती है । अतः गुरुमहाराज ने उनके विशेष अभ्यास के लिए पंडित की व्यवस्था की नेमिविजयजी ने संस्कृत व्याकरण अलंकार शास्त्र इत्यादि का अभ्यास प्रारंभ किया। हेमचंद्राचार्य और यशोविजयजी के संस्कृत प्राकृत ग्रंथों का अभ्यास गुरु महाराज स्वयं करवाने लगे । प्रथम चातुर्मास भावनगर में ही करने का निर्णय किया । चार छः महिने में तो मुनि नेमिविजयजी की प्रतिभा खिल उठी । वे अपने से उम्र में बडे महुवा - निवासी गुरुबंधु मुनि धर्मविजयजी को भी संस्कृत का अभ्यास करवाने लगे ।

उपाश्रय में प्रतिदिन साधुओं को प्रणाम करने आनेवाले कुछ लोग मुनि नेमिविजयजी के पास बैठते थे । कभी कोई प्रश्न हो तो नेमिविजयजी उन्हें समझाते थे । एक गृहस्थ तो उनके पास प्रतिदिन नियमित आते थे । एक दिन गुरु महाराज ने देखा कि

उस गृहस्थ को समझाते समय मुनि नेमिविजयजी की वाणी धाराप्रवाह बहती है । उनकी वाणी संस्कारी है और उच्चारण शुद्ध है । उनके विचार सरलता से बहते हैं । व्याख्यान देने की उनमें सहजशक्ति प्रतीत होती है । वृद्धिचंद्रजी महाराज शिष्यों के विकास में हमेशा उत्साही रहते थे । प्रसंग देखकर शिष्यों को वे अचानक बडी जिम्मेदारी सौंप देते थे, और उनका आत्मविश्वास बढा देते थे । पर्युषण पर्व के दौरान एक दिन जशराजभाई से कहा कि : 'कल का व्याख्यान मुनि नेमिविजयजी पढ़ेगे । किन्तु यह बात अभी किसी को कहना मत' इससे जशराजभाई को आश्चर्य हुआ ।

व्याख्यान-प्रारम्भ :

दूसरे दिन गरुमहाराज ने नेमिविजय के हाथ में 'कल्पसूत्र' की सुबोधिका टीका की हस्तप्रत के पृष्ठ दिए और व्याख्यान खंड में जाने के लिए कहा । उन्होंने नेमिविजय को अपना 'कपडा' पहनने को दिया । किन्तु नेमिविजयजी कुछ समझे नहीं । गुरुमहाराज ने व्याख्यान पढ़ने वाले मुनि चारित्रविजयजी के साथ ऐसा मेल बैठाया था कि सभाखण्ड में नेमिविजयजी को अचानक ही व्याख्यान देने के लिए विवश होना पडता । नेमिविजयजी नीचे के मंच(तख़त) पर बैठने जा रहे थे कि चारित्रविजयजी ने उन्हें अपने निकट बैठाया और श्रावक श्राविकाओं को प्रथम पचक्खाण देकर घोषणा की कि आज का व्याख्यान मुनि नेमिविजयजी पढ़ेगें । इतना कहकर वे फौरन मंच से उतरकर चले गए । नेमिविजयजी अचानक विचार में पड

गए । किन्तु अब व्याख्यान पढे बिना मुक्ति न थी । उनकी तैयारी तो थी ही और आत्मविश्वास भी था अतः गुरुमहाराज को भाव वंदनकर उनके आशिर्वाद के लिए प्रार्थना कर व्याख्यान पढ़ना शुरु किया । फिर तो उनकी वाणी धाराप्रवाह बहने लगी । अतः व्याख्यान में बैठे जशराजभाई और अन्य श्रावकगण आश्चर्यचकित रह गए । व्याख्यान पूर्ण होने पर उन्होने नेमिविजय के व्याख्यान कौशल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और गुरु महाराज के समक्ष भी बहुत प्रशंसा की ।

बडी दीक्षा :

श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज श्री नेमिविजयजी को बड़ी दीक्षा देने वाले थे किन्तु मूलचंद महाराज के कालधर्म के पश्चात योगोद्वहन करवाकर बड़ी दीक्षा दे सके ऐसा कोई न रहा था । अतः महाराजश्री नेमिविजयजी को जहां भेजा गया था वहां पन्यास श्री प्रतापविजयजीने योगोद्वहन करवाने के बाद महाराज श्री नेमिविजयजी को बडी दीक्षा दी । इसके बाद महाराज श्री नेमिविजयजी विहार कर अपने गुरु महाराज के पास वापस आए ।

उन दिनों श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज भावनगर में स्थायी हो गए थे, क्योंकि उन्हें संग्रहणी और संधिवा (जोडों का दर्द) का दर्द हो गया था । तबियत अस्वस्थ होते हुए भी वे चारित्र्यपालन में स्वध्याय में शिष्यों को अभ्यास करवाने में कठिन नियमों का पालन करनेवाले थे । तत्त्व-पदार्थ का उन्हें अच्छा ज्ञान था इसीलिए गृहस्थ भी उनके पास शंका-समाधान और ज्ञान-गोष्ठी के लिए आते थे ।

उस समय श्री अमरचंद जशराज, श्री कुंवरजी आणंदजी इत्यादी रात्रि के समय आतें और बारह-एक बजे तक चर्चा होती थी । महाराज श्री का स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी उन्होंनें स्वयं किसी को "आप अब जाइए" ऐसा नहीं कहा । महाराज श्री नेमिविजयजी ने देखा कि गुरुमहाराज को बहुत कष्ट होता है । एक दिन गुरुमहाराज ने नेमिविजयजी से कह ही दिया:- देखो नेमा मेरा शरीर अस्वस्थ है और ये लोग रोज मुझे जागरण करवाते हैं ।

उस रात जब श्रावक आए तो महाराज श्री नेमिविजयजी ने श्रावकों से कह दिया कि- 'आप सब गुरु महारज की भक्ति करने आते हैं या जागरण कराने ।' समझदार श्रावक फौरन बात समझ गए दूसरे दिन से वे जल्दी आने और जल्दी ही उठने लगे ।

शास्त्राध्ययन में प्रगति :

महाराज श्री नेमिविजयजी बराबर चार चातुर्मास अपने गुरुमहाराज के साथ भावनगर रहे । गुरु महाराज की वैयावच्च और स्वयं के स्वाध्याय के लिए यह बहुत आवश्यक था । इससे महाराज श्री का शास्त्राभ्यास बहुत अच्छा रहा । वे प्रतिदिन सौ श्लोक कंठस्थ करते थे । हेमचंद्राचार्य के व्याकरण के अतिरिक्त पाणिनी के व्याकरण का भी उन्होंने सुन्दर अभ्यास किया । उन्होंने मणिशंकर भट्ट, नर्मदाशंकर-शास्त्री तथा राज्य के शास्त्री भानुशंकर भाई इन तीन अलग-अलग पंडितों से अभ्यास किया । उनकी वाक्य छटा भी बहुत प्रभावक थी । इस संदर्भ में महाराज श्री की प्रसिद्धि फैलने पर काशी से

अभ्यास करके आए संस्कृत में बोलनेवाले एक नाथालाल नामक भाई ने संस्कृत-संभाषण और शास्त्रचर्चा के लिए चुनौती दी । महाराज श्री ने उसे स्वीकार कर लिया । महाराज श्री जिस प्रकार शुद्ध संस्कृत में धाराप्रवाह बोलते थे और उचित उत्तर दे रहे थे, उसे देखकर निर्णायकों ने महाराज श्री को विजयी घोषित किया । इससे गुरु महाराज बहुत प्रसन्न हुए । अभ्यास कराने वाले पंडितों को अपना श्रम सार्थक प्रतीत हुआ । महाराज श्री की प्रसिद्धि इस प्रसंग से बहुत बढ गई।

पालीताणा में चातुर्मास : (सं. १९४९)

उन दिनों पंजाबी साधु श्री दानविजयजी ने पालीताणा में श्री बुद्धिसिंहजी जैन संस्कृत पाठशाला की स्थापना की थी । श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज की भी इस संदर्भ में प्रेरणा थी । श्री दानविजयजी ने देखा कि श्री नेमिविजयजी को पढने की लालसा बहुत है और पढने की शक्ति भी बहुत अच्छी है । अतः उन्होंने श्री वृद्धिचंद्रजी को पत्र लिखकर अनुरोध किया कि श्री नेमिविजयजी पालीताणा में रहकर चातुर्मास करे । इस अनुरोध के स्वीकार होने पर श्री नेमिविजयजी ने वि.सं. १९४९ का चातुर्मास पालीताणा में करने के लिए चैत्र महिने में विहार किया । दूसरी ओर थोडे ही दिनों में बैसाख सुद सप्तमी के दिन श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज का काल धर्म हुआ । अंतिम समय वे गुरुमहाराज के पास न रह पाए इस बात का गहरा शोक महाराज श्री नेमिविजयजी को हुआ ।

जामनगर में चातुर्मास : (सं. १९५०)

पालीताणा में महाराज श्री ने श्री दानविजयजी के साथ मिलकर अध्ययन अध्यापन का सघन कार्य प्रारंभ किया । चातुर्मास के बाद महाराजश्री गिरनार की यात्रा कर विचरन करते हुए जामनगर पहुंचे । यहाँ लोगों को उनके व्याख्यानों का आकर्षण इतना हुआ कि सं.१९५० का चातुर्मास जामनगर में करने का विचार किया । महाराज के दीक्षा पर्याय के अभी लगभग छः वर्ष होने आए थे किन्तु उनकी तेजस्विता का बहुत प्रभाव पडता था । जामनगर का उनका स्वतंत्र चातुर्मास था । यहां उनके व्याख्यानों और उनके समझाने की शक्ति का इतना प्रभाव हुआ की उनसे उम्र में बडे एक श्रीमंत को उनसे दीक्षा लेने का मन हुआ । इस श्रीमंत श्रावक को खाने पीने का बहुत शोक था । प्रतिदिन भोजन मे पेडे (पेडा) के बिना नही चलता था बीडी इत्यादि का भी उन्हें व्यसन था । इसीलिए परिवार के लोग उन्हें दीक्षा लेने से रोकते थे । केस को कोर्ट में लेजाया गया फिर भी उन्होंने दृढतापूर्वक महाराज श्री से दीक्षा ली । उनका नाम सुमतिविजय रखा गया । दीक्षा लेते ही उनके व्यसन एवं शौक स्वाभाविक ढंग से छूट गए । महाराज श्री के सानिध्य में संयमित जीवन अच्छी तरह बिताने लगे ।

जामनगर के चातुर्मास की एक दूसरी महत्वपूर्ण फलश्रुति यह थी कि महाराजश्री की निश्रा में सिद्धाचलजी तथा गिरनार का ६ 'री' पालक संघ निकाला गया । महाराजश्री को तीर्थयात्रा संघ

का यह प्रथम अनुभव ही था । किन्तु यह अनुभव इतना सुंदर था कि बाद में महाराज श्री के चातुर्मास के पश्चात बहुत से स्थलों से तीर्थयात्रा संघ का आयोजन होने लगा ।

महुवा में चातुर्मास : (सं. १९५१)

महाराजश्री को दीक्षा ग्रहण किए लगभग छह वर्ष हो गए थे । दीक्षा ग्रहण करने के बादवे अपनी जन्मभूमि नहीं गए थे । अतः महुवा के संघ ने उन्हें वि.सं.१९५१ का चातुर्मास महुवा में करने के लिए पधारने का आग्रहपूर्ण अनुरोध किया । जामनगर के चातुर्मास और तीर्थयात्रा संघ के बाद विहार करते-करते महाराज श्री ने जब महुवा में प्रवेश किया तब महोत्सवपूर्वक उनकी भव्य अगवानी की गई । दीक्षा के पश्चात महाराज श्री का महुवा में यह प्रथम प्रवेश था । उनके माता-पिता भी जीवित थे । महाराज श्री उनके घर गोचरी के लिए पधारे तब अपने दीक्षित पुत्र को गोचरी (मधुकरी) देते हुए वे गद्‌गद् हो गए ।

महुवा में महाराजश्री ने मैत्री इत्यादि चार भावनाओं पर सुंदर व्याख्यान दिए । उनकी आवाज बुलंद थी । विशाल जनमेदनी उनके व्याख्यानों को सुनने के लिए एकत्रित होती थी । इस चातुर्मास के दौरान महाराज श्री के हाथों दो महत्वपूर्ण कार्य हुए (१) उनकी प्रेरणा से महुवा में पाठशाला की स्थापना की गई और उसके लिए दान की रकम महाराज श्री के बाहरगांव के दो भक्तों की ओर से

मिली तथा (२) महाराजश्री के हाथों महुवा के एक गृहस्थ को दीक्षा दी गई और उनका नाम सौभाग्यविजयजी रखा गया ।

'अष्टकजी' का वांचन (अभ्यास) :

महुवा के चातुर्मास के बाद शत्रुंजय, शंखेश्वर इत्यादि तीर्थों की यात्रा कर महाराजश्री राधनपुर पधारे । राधनपुर में महाराज श्री के व्याख्यानों का गहरा प्रभाव होने लगा और दिन प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढने लगी । महाराज श्री राधनपुर में थे तब एक बार वे हरिभद्रसूरि कृत 'अष्टक' पढ रहे थे । हरिभद्रसूरि का यह ग्रंथ इतना पवित्र और पूजनीय माना जाता है कि इस ग्रंथ के लिए श्रावकगण और साधुभगवंत 'जी' लगाकर 'अष्टकजी' बोलते हैं । महाराजश्री इस ग्रंथ का पठन कर रहे थे तभी कुछ श्रावक मिलने आए । उन्होंने सहज जिज्ञासा से पूछा :

'साहेब किस ग्रंथ का पठन कर रहे हैं?''

'अष्टकजी' का महाराज श्री ने कहा

'अष्टकजी' का साहेब आपका दीक्षापर्याय कितना है?

'सात वर्ष का' क्यों पूछना पडा ?'

'साहेब अविनय क्षमा करें किन्तु 'अष्टकजी' तो बीस वर्ष के दीक्षा पर्याय के बाद ही पढा जा सकता है ।'

'भाई मैं तो उसमें चौदह स्वर और तैंतीस व्यंजन लिखे हैं वे पढ रहा हूं । यद्यपि आप कह रहे हैं ऐसा नियम किसी ग्रंथ में पढा नहीं है । आपने पढा हो तो बताइए''

किन्तु ऐसा किसी ग्रंथ में लिखा हो तो श्रावकगण बताए न ? वस्तुतः उन दिनों संस्कृत भाषा और शास्त्रों का अभ्यास घट गया था इसीलिए ऐसी बात प्रचलित हुई होगी ।

वढवाण में चातुर्मास : (सं. १९५२)

राधनपुर से विहार करके महाराजश्री शंखेश्वर होकर वढवाण पधारे और वि.सं. १९५२ का चातुर्मास वढवान में किया । चातुर्मास के बाद महाराजश्री लींबडी पधारे । वहां मुनि आनंदसागर (सागरजी महाराज) मिले । मुनि आनंदसागर उम्र तथा दीक्षा पर्याय में छोटे थे । यद्यपि भाषा, व्याकरण तथा शास्त्र - अभ्यास के लिए बहुत उत्सुक थे । अतः महाराज श्री ने उन्हें कुछ दिन साथ रहकर व्याकरण का अभ्यास करवाया । तत्पश्चात् विहार करके महाराजश्री पालीताणा पधारे ।

अहमदाबाद में चातुर्मास : (सं. १८५३)

पालीताणा में उस समय श्रीदानविजयजी बिराजमान थे । वे विद्वान और तार्किक शिरोमणि थे । उनकी व्याख्यान शैली भी छटा पूर्ण थी । उन दिनों पालीताणा के ठाकुर का शेत्रुंजय तीर्थ के संदर्भ में जैनों के साथ संघर्ष चल रहा था । किन्तु पंजाबी निडर मुनि दानविजयजी व्याख्यान में बारबार उद्‌बोधन करते थे कि ठाकुर की तानाशाही स्वीकार नहीं करनी चाहिए । इससे ठाकुर श्री दानविजयजी पर कडी नजर रखता था । श्री नेमविजयजी को लगा कि यह संघर्ष अभी बढाना उचित नहीं है । श्री दानविजयजी की

उपस्थिति से ये बढने की आशंका है और सबके देखते विहार करके जाएं तो भी तर्क-वितर्क होने की आशंका है अतः महाराज श्री ने उन्हें मुंह अंधेरे पालीताणा राज्य से बाहर भेज दिया और स्वयं वहां रुककर वातावरण शांत करवाया । पालीताणा से विहार करके महाराजश्री अहमदाबाद पधारे । दानविजयजी इससे पहले अहमदाबाद आ गए थे और पांजरापोल के उपाश्रय में बिराजे थे । उन्होंने उस समय तत्वार्थसूत्र पर व्याख्यान शुरु किए थे । उन्हें सुनने के लिए श्रावकों की संख्या बहुत बढी थी । तेजस्वी व्यक्तित्व था, शास्त्रज्ञ थे और अच्छे वक्ता थे । अतः उनकी वाणी का आकर्षण बहुतों को हुआ था । इतनें में उनका स्वास्थ्य बिगडा, आराम के लिए शेठ हठीसिंह की वाडी में वे गए । उन्होंनें व्याख्यान की जिम्मेदारी महाराज श्री नेमिविजयजी को सौंपी । अहमदाबाद जैसा बडा नगर, पांजरा पोल का उपाश्रय, जानकार प्रतिष्ठित श्रोतावर्ग, उसमें भी महाराज श्री नेमिविजय जी का प्रथम बार पधारना । फिर भी उन्होंनें तत्वार्थसूत्र पर इतने सुंदर व्याख्यान दिए कि महाराजश्री को चातुर्मास वहीं करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की गई । उस समय शेठ मनसुखभाई भगुभाई, शेठ हठीसींह केसरीसिंह, शेठ लालभाइ दलपतभाई, शेठ धोलशाजी, शेठ मणिभाई प्रेमाभाई, शेठ पानाचंद हकमचंद, शेठ डाह्याभाई देवता इत्यादि प्रसिद्ध श्रेष्ठी महाराज श्री के व्याख्यान में आते थे ।

अहमदाबाद के वि.सं. १९५३ के चातुर्मास के बाद महाराज श्री विहार करके कपडवंज पधारे थे । उस समय खंभात से शेठ

श्री अमरचंद प्रेमचंद के पुत्र श्री पोपटलाल अमरचंद और अन्य श्रेष्ठी कपडवंज आए और महाराश्री को खंभात में वि.सं.१९५४ का चातुर्मास करने की प्रार्थना की । महाराज श्री ने इस प्रार्थना का स्वीकार किया और यथा समय चातुर्मास के लिए खंभात पधारे ।

पाठशाला की स्थापना :

शेठ श्री अमरचंद प्रेमचंद खंभात की एक निराली प्रतिभा थी । वे खूब धन कमाते किन्तु अपने परिग्रह परिणाम के व्रत का चुस्त पालन करने के लिए प्रतिवर्ष बहुत सा धन धर्मकार्यों में और साधार्मिकों को मदद करने के लिए खर्च करते थे । उन्होंने सिंहाचल, आबू, केसरियाजी समेत शिखर इस तरह अलग-अलग मिलाकर आठ बार छ 'री' पालक संघ निकाले थे । सातेक बार उन्होंने उपधान कराए बारह व्रतधारी श्री अमरचंदभाई ने महाराज श्री के उपदेश से 'श्री वृद्धिचंद्रजैन संस्कृत पाठशाला' की स्थापना के लिए बडा आर्थिक योगदान दिया था । विद्यार्थियों को उसमें धार्मिक अभ्यास के साथ संस्कृत भाषा व्याकरण इत्यादि का अभ्यास करवाने के लिए उत्तर भारत से पंडितों को बुलवाया गया था । (इस पाठशाला में अभ्यास करके उजमशीभाई थीया ने महाराज से दीक्षा ली थी और वे उदयसूरि बने थे)

जगम पाठशाला :

इस पाठशाला के अतिरिक्त महाराज श्री ने एक 'जंगम पाठशाला' की स्थापना की । महाराजश्री के साथ वे विद्यार्थी विहार

करें जो प्रत्येक गांव में अपने आवास और भोजन की व्यवस्था कर महाराज के पास अभ्यास करें ।

चातुर्मास पूर्ण होते ही शेठ श्री अमरचंदभाई ने सिद्धाचल का संघ ले जाने की भावना व्यक्त की । खंभात में पाठशाला के और अन्य कुछ काम अपूर्ण थे फिर भी महाराज श्री संघ में शामिल हुए । उनकी निश्रा के कारण बहुत बडा संघ निकला और लोगों की धर्मभावना में वृद्धि हुई । शेठ अमरचंदभाई को जीवन का अंतिम बडा कार्य करने का संतोष हुआ ।

खंभात में जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा :

खंभात के अपूर्ण कार्यों के लिए दूसरा चातुर्मास भी खंभात में करने का महाराजश्री को आग्रह किया गया । इस चातुर्मास के दौरान महाराज श्री की प्रेरणा से जीर्णोद्धार का एक महत्त्वपूर्ण कार्य ऐसा हुआ कि खंभात के भिन्न-भिन्न विस्तार में उन्नीस के करीब देरासर जीर्ण हो गए थे इतना ही नहीं श्रावकों की जनसंख्या भी वहां घट गई थी । देरासरों के निर्वाह की भी मुसीबत थी । इससे इन सभी देरासरों की प्रतिमा जीरावाला पाडा के देरासर का जीर्णोद्धार कर वहां पधारने का निर्णय लिया गया । शेठ अमरचंदभाई के पुत्र पोपटभाई ने इसकी समस्त जिम्मेदारी उठा ली । और तन, मन धन से बहुत भोग दिया । इसके पश्चात स्थंभन पार्श्वनाथ भगवान की नीलरत्न की सात इंच की ऐतिहासिक प्रतिमा वि.सं. १९५२ में चोरी हो गई

थी और बाद में मिल गई थी उसकी भी प्रतिष्ठा महाराज श्री के हाथों धामधूम से की गई ।

डॉ. जेकाबी की शंकाओं का समाधान :

खंभात में उस समय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना घटित हुई । जर्मनी के विद्वान डो.हर्मन जेकोबी ने पाश्चात्य जगत को जैन धर्म का परिचय उस समय करवाया था । जर्मनी में रहते हुए वहाँ उपलब्ध हस्तप्रत के आधार पर उन्होंने जैन धर्म के कुछ ग्रंथों का संशोधन संपादन किया परन्तु उनके आचारांग ने भारत के जैनों में विवाद उत्पन्न किया, क्योंकि उन्होंने ऐसा प्रतिपादित किया था कि जैन आगमों में मांसाहार का विधान है । अतः महाराजश्री और मुनि आनंदसागरजी (सागरजी महाराज) ने साथ मिलकर 'परिहार्य-मीमांसा' नामक पुस्तिका लिखकर डो. जेकोबी के विधानों का आधार सहित विरोध किया । डो. जेकोबी जब भारत आए तब महाराजश्री से मिलने खंभात गए थे । वे ढेर-सी शंका लेकर उपस्थित हुए थे किन्तु दो दिन ही रुकने से उनकी मुख्य-मुख्य शंकाओं का समाधान हो गया । इसीलिए उन्होंने अपनी भूलों का लेखित स्वीकार किया था' ।

पेटलाद में जीवदया की प्रवृत्ति :

वि.सं. १९५५ का चातुर्मास खंभात में कर महाराज श्री पेटलाद पधारे । वि.सं.१९५६ का साल था । उस वर्ष अकाल पडा था, उसे छप्पनिया दुकाल के रूप में जाना गया । कुछ स्थानों पर

मनुष्य मरने लगे थे । मूक प्राणियों की स्थिति इससे भी दयाजनक थी । लोगों के पास अपने चौपायों को खिलाने के लिए घासचारा या उसके लिए पैसा नहीं था । अतः वे कसाई के हाथों अपने प्राणी बेच देते थे । महाराज श्री को लगा कि प्राणियों को बचाने के लिए कोई व्यवस्था करनी चाहिए ।

एक दिन पेटलाद में महाराजश्री उपाश्रय में बैठे थे । तभी रास्ते में देखा कि कोई मनुष्य कुछ भैसों को ले जा रहा था । उसकी चाल और हावभाव से महाराजश्री को लगा कि अवश्य वह कसाई है । पाठशाला के विद्यार्थिओं द्वारा चुपचाप जानकारी करवाने पर महाराजश्री को मालूम हुआ की उनका अनुमान सच्चा है । अब इन भैसों को कैसे बचाया जाय ?

महाराजश्री ने विद्यार्थियों को मार्ग बताया । विद्यार्थियों ने भैसों के पास जाकर उन्हें इस तरह भडकाया कि सभी भैसें यहां-वहां भाग गई । कसाई के हाथ एक भी न लगी, बाद में भी वे न मिली । कसाई ने विद्यार्थियों के विरुद्ध शिकायत की । केस चला । न्यायाधीश ने विद्यार्थियों को छोड दिया । महाराजश्री ने चौपायों के निर्वाह के लिए स्थायी फंड एकत्रित किया और पशु सुरक्षा गृह (पांजरापोल) की व्यवस्था सुदृढ बनाई ।

पेटलाद से महाराजश्री मातर, खेडा इत्यादि स्थलों पर विहार करते हुए कहीं गांव में व्याप्त कुसंप का निवारण करते, तो कहीं देरासर या उपाश्रय के जिर्णोद्धार के निर्वाह के लिए उपदेश देते .तो

कहीं पशु सुरक्षा गृह (पांजरापोल) की स्थापना के लिए या उसके निर्वाह के लिए आग्रह करते । महाराज श्री के व्याख्यानों का प्रभाव इतना था कि जैनेतर अमलदार भी उनकी वाणी सुनने आते थे ।

खेडा में महाराज श्री थे तब अहमदाबाद संघ के श्रेष्ठी प्रार्थना करने आए कि आगामी वि.सं. १९५६ का चातुर्मास अहमदाबाद में किया जाय । उनके अनुरोध को स्वीकार करते हुए महाराज श्री ने अहमदाबाद की ओर प्रयाण किया ।

पांजरापोल-निर्वाह : श्रुतज्ञान का प्रचार :

अहमदाबाद में प्रवेश कर महाराज श्री ने पांजरापोल के उपाश्रय में चातुर्मास किया इस चातुर्मास के दौरान उन्होंने पांजरापोल (पशु सुरक्षा गृह)के निर्वाह हेतु बहुत बडी रकम एकत्रित करवाई । तत्पश्चात महाराज श्री ने श्रावकों में श्रुतज्ञान का प्रचार हो इस हेतु से 'जैन तत्वविवेचक सभा' नाम की संस्था स्थापित करवाई ।

अहमदाबाद के चातुर्मास के दौरान पाटण के एक गरीब लडके को शेठ जेसिंगभाई के यहां नौकरी लगवाने के लिए एक भाई ले जा रहे थे । रास्ते में पांजरा पोल के उपाश्रय में वे महाराज श्री की वंदना करने गए । उस समय लडके ने शेठ के घर में रहने के बदले उपाश्रय में रहने का हठाग्रह किया । लडका बहुत तेजस्वी था । वह उपाश्रय में ही रह गया । किन्तु उसकी उम्र अभी छोटी थी और छोटे लडके को दीक्षा दिलाने की घटना से हंगामा हो सकता है । इससे उसकी नौ वर्ष की उम्र होने पर महाराज

श्री ने उसे और दूसरे एक भाई त्रिभोवनदास को जिसे दीक्षा लेनी थी उन्हें कासीन्द्रा नामक छोटे गांव में भेजा और वहां श्री सागरजी महाराज तथा श्री सुमति विजयजी महाराज के यहां जाकर उन दोनों को दीक्षा देने का प्रस्ताव रखा । उसके अनुसार धामधूम बिना ही दीक्षा दी गई और बालक का नाम रखा गया मुनि यशोविजयजी और उन्हें महाराज श्री के रूप में घोषित किया गया । थोडा समय अन्योत्र विचरण कर चातुर्मास में महाराज के साथ जुड गए । यह तेजस्वी बाल मुनि महाराजश्री को अत्यंत प्रिय था ।

योगोद्वाहन :

अहमदाबाद के इस चातुर्मास के बाद भावनगर से महाराज श्री के आदरणीय गुरु बंधु पंन्यासश्री गंभीर विजयजी का संदेशा आया। गुरु महाराज श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज ने पंन्यास श्री गंभीर विजयजी को आज्ञा दी थी कि समय आने पर उन्हें महाराज श्री नेमिविजयजी को योगोद्वहन करवाना है । इसलिए श्री गंभीर विजयजी ने महाराजश्री को भावनगर बुलवाया था । महाराजश्री का स्वास्थ्य इतना अच्छा न था कि विहार का श्रम उठा सके । अतः ये समाचार आने पर और अहमदाबाद के श्रेष्ठीयों के स्वयं जाकर प्रार्थना करने पर श्री गंभीरविजयजी स्वयं विहार कर अहमदाबाद पधारे और महाराज श्री को 'उत्तराध्ययन सूत्र' का योगोद्वहन करवाया और वि.सं. १९५७ का चातुर्मास भी उन्होंने साथ ही पांजरा पोल के उपाश्रय में किया । तत्पश्चात १९५८ का चातुर्मास भी उन्होंने अहमदाबाद में ही किया । अन्य कुछ आगमों

का भी योगद्वान महाराज श्री ने करवा दिया । इसी दौरान श्री दानविजयजी महाराज क्षय की बीमारी के कारण पालीताणा में कालधर्म को प्राप्त हुए । इस समाचार से महाराजश्री को अपने एक विद्या गुरु को खोने का दुःख हुआ । चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराजश्री ने पंन्यासजी महाराज के साथ भावनगर की ओर विहार किया ।

प्लेग का उपद्रव, बीमारी :

वि.सं. १९५९ का चातुर्मास महाराज श्री ने पंन्यास श्री गंभीरविजयजी के साथ भावनगर में किया । इस चातुर्मास के दौरान पंन्यासजी ने महाराज श्री को 'भगवती सूत्र' के बडे योग में प्रवेश करवाय । इसी समय भावनगर में प्लेग का उपद्रव फैला हुआ था, अतः उन्हें वहां से अचानक प्रयाण कर शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार निकट के वरतेज गांव में जाना पड़ा । किन्तु वहां भी प्लेग के किस्से बढने लगे थे । स्वयं पंन्यासजी महाराज के दो शिष्यों को प्लेग की गांठ निकली । इससे पंन्यासजी महाराज चिंताग्रस्त हो गए। किन्तु महाराज श्री नेमिविजयजी ने उन दो शिष्यों का रात-दिन उपचार किया । जिससे उनकी गांठ गल गई और वे प्लेग से बचगए । किन्तु इस परिश्रम के कारण महाराज श्री को ज्वर हो गया । जो कम ही नहीं होता था । ये समाचार महाराज श्री के परमभक्त शेठ श्री मनसुखभाई भगुभाई को अहमदाबाद में मिले । उन्होंने फौरन तार करके भावनगर के एक डॉक्टर को वरतेज भेजा । इतना ही नहीं महाराजश्री का ज्वर कम हुआ या नहीं ये जानने के लिए एक दिन

में कई तार किए । उन दिनों जल्दी समाचार प्राप्त करने के लिए एक मात्र साधन तार ही था और उसका प्रयोग भी लोग मजबूरी में ही करते थे । वरतेज जैसे छोटे गांव में चौबीस घंटे में इतने सारे तार आए अत: पोस्ट मास्टर को बहुत आश्चर्य हुआ । महाराजश्री का स्वास्थ्य सुधरा नहीं है यह मालूम होने पर मनसुखभाई ने अपने अहमदाबाद के डॉक्टर को वरतेज भेजा । उस समय मनसुखभाई के अपने पुत्र को ज्वर था किन्तु गुरुमहाराज के महत्व को समझते हुए उन्होंने डॉक्टर को वहां भेजा था । डॉक्टर के आने से यथोचित उपचार होने पर महाराजश्री का ज्वर उतर गया । इससे शेठ निश्चित हुए ।

वल्लभीपुर में 'गणी' और 'पन्यास' पदवी :

चातुर्मास पूर्ण होते ही पंन्यासजी महारज और अन्य मुनिवर वला (वल्लभीपुर) पधारे । वला का प्राचीन ऐतिहासिक नाम वल्लभीपुर महाराजश्री ने प्रचलित किया था । वल्लभीपुर के ठाकुर साहेब श्री वखतसिंह महाराज श्री के अनन्य भक्त थे । महाराजश्री के 'भगवतीसूत्र' के जोग पूरे होने आए थे । अत: उन्हें गणि तथा पंन्यास की पदवी वल्लभीपुर में दी जाय ऐसा उनका विशेष आग्रह था । अंतत: वही निर्णय हुआ । महाराजश्री के दूसरे अनन्य भक्त अहमदाबाद के शेठ मनसुखभाईने इस महोत्सव के समस्त आदेश स्वयं प्राप्त करलिए । पंन्यास श्री गंभीरविजयजी महाराज ने चतुर्विध संघ के समक्ष संपूर्ण विधी करके महाराजश्री को 'गणि' पदवी और उसके बाद थोडे दिन

बाद 'पंन्यास' पदवी अर्पण की थी । इस उत्सव के बाद महाराज श्री ने वल्लभीपुर में मुनि आनंदसागरजी, मुनि प्रेमविजय जी तथा मुनि श्रीसुमतिविजयजी को 'भगवती सूत्र' के योगमें प्रवेश करवाया था । उसके पश्चात महाराज श्री वहां से प्रयाण कर अहमदाबाद पधारे और वि.सं. १९६० का चातुर्मास उन्होंने अहमदाबाद में किया ।

वि.सं. १९६० के चातुर्मास के बाद अहमदाबाद से शेठ श्री वाडीलाल जेठालाल ने महाराज श्री की निश्रा में सिद्धाचल की यात्रा का संघ निकाला । संघ ने यात्रा निर्विघ्न और उत्साहपूर्ण ढंग से पूरी की थी । महाराज श्री उसके बाद पालीताणा में कुछ समय स्थायी हुए ।

पालीताणा-ठाकुर की धृष्टता सम्मुख विजय :

पिछले कुछ समय से पालीताणा के ठाकुर श्री मानसिंह जी को जैनों के प्रति द्वैष हो गया था । ठाकुर के राज्य में शत्रुंजय का पहाड था । वे पहाड पर जूते पहनकर चढते थे । इस बात के लिए किसी ने उन्हें टोका अतः ठाकुर को लगा कि वे स्वयं राज्य के मालिक हैं और कोई सामान्य मनुष्य उनकी आलोचना कैसे कर सकता है ? असहिष्णु और क्रोधी स्वभाव के ठाकुर ने जैनों की पवित्र भावना का आदर करने के बदले जानबूझकर बूट पहनकर धुम्रपान करते हुए पहाडी पर सीधे दादा के दरबार में जाना शुरु किया । इससे जैनों की भावना को और भी चोट पहुंची । ठाकुर के इस अविवेकपूर्ण दुष्ट कृत्य के लिए बहुत ऊहापोह हुआ और

विरोध प्रदर्शित करते हुए ठाकुर पर गांव-गांवसे तार आने लगे । किन्तु ठाकुर पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ ।

यह बात महाराजश्री नेमिविजयजी के पास आई तब उन्होंने शेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी के होद्देदारों से कहा कि वे स्वयं जाकर ठाकुर को समझाए और न माने तो बाद में राजकोट की पोलिटिकल एजन्ट की कोर्ट में केस दाखिल कराऐं । शेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी के होद्देदार ठाकुर को समझाने में निष्फळ गए अतः कोर्ट में केस दाखिल किया गया । इससे ठाकुर और उत्तेजित हुआ । उन्होंने गांव के मुसलमानों को बुलवाया और भडकाया । उन्होंने मुसलमानों से कहा कि टेकरी पर टूंगारशा पीर के स्थान में राज्य के खर्च से पक्की दीवाल बनवा दी जाएगी और एक कमरा भी बँधवा दिया जाएगा । ठाकुर ने जैनों को धमकी देते हुए कहलवाया "में टूंगारशा पीर के स्थानक में मुसलमानों के द्वारा बकरे की बलि चढवाऊँगा और दादा आदिश्वर पर उसका रक्त छिडकूंगा, तभी संतुष्ट होऊँगा ।"

इस बात की जानकारी होने पर पालीताणा के जैन साधु-साध्वी और श्रावक-श्रावीका की एक गुप्त सभा महाराज श्री के सान्निध्य में आयोजित की गई । यह आशातना बंध करवाने के लिए कौन-कौन से कदम उठाने चाहिए उसकी गंभीर चर्चा हुई । ठाकुर यदि और चिढ जाय तो अपने राज्य में जैनों को बहुत संत्रास दे सकता है इसलिए खूब समझदारी से काम लेने की आवश्यकता थी । साधु-

साध्वीयों को तकलीफ न हो इसलिए महाराजश्रीने उन सभी को पालीताणा राज्य की सीमा छोड़कर भावनगर राज्य की हद में चले जाने को कहा । ऐसे काम में शरीर से सशक्त, हिंमतवान और काबिल मनुष्योंकी जरूरत पड़ती है । इसलिए भाईचंदभाई नामक एक काबिल भाई तैयार हुए । उन्होंने राज्य के कार्यालय में से दस्तावेज की प्रति प्राप्त कर ली । उन पर शंका होने पर राज्य पुलिस ने उन्हें पकडकर कैद करलिया किन्तु कोई प्रमाण ने मिलने से दूसरे दिन उन्हें छोड दिया भाईचंदभाई डरें ऐसे न थे । उन्होंने पालीताणा के आसपास के गांवों के आयर लोगों को समझाया कि मुसलमान लोग तुम्हारे बकरे उठवाकर इनका वध करावाएँगे, तो कुछ समय बाद तुम्हारे भेड़ बकरे कम हो जाऐगें और आपकी जीविका नष्ट हो जाएगी । इससे आयर चिंताग्रस्त हो गए भाईचंदभाई आयरों को महाराजश्री के पास ले आए और आयरों ने महाराज श्री से कहा कि 'हम' लोग किसी भी हालत में पीर के स्थानक कमरा या झुग्गी नहीं बनने देगें, कि जिससे मुसलमान बकरों का वध करें । राज्य की ओर से ईंट-पत्थर-चुना-रेती इत्यादि टेकरी पर चढाया जाता तो आयर लोग आधी रात को वहाँ से सब उठाकर इस तरह दूर फेंक देते थे कि उसकी कोई जानकारी न मिलती और न ही कोई पकडा जाता था । इससे राज्य के नौकर थक गए । ठाकुर भी क्रोधित हुआ किन्तु किसे पकडे वह समझ नहीं पाता था ।

इस समय ही राजकोट की कोर्ट का निर्णय आया । इसमें पेढ़ी का विजय हुआ । ठाकुर हार गए । जूते पहनकर धुम्रपान करते हुए पहाडी पर चढने पर उन्हें मना किया गया । तीर्थ की आशातना बंध करने का उन्हें हुक्म दिया गया । कोर्ट का आदेश मिलने पर ढाकर विवश हो गए । महाराजश्री की प्रेरणा और सुझबुझ से प्राप्त विजय का उत्सव गाँव के लोगों ने मनाया ।

महुवा में 'अष्टकजी' विषयक व्याख्यानों :

तत्पश्चात पालीताणा से विहार करके महाराजश्री महुवा पधारे उनके संसार पिताश्री लक्ष्मीचंदभाई अब वृद्ध हो गए थे । वे महाराज श्री के व्याख्यान में प्रतिदिन आते थे । महाराजश्री के व्याख्यान सुनकर लक्ष्मीचंदभाई का बहुत कुछ हृदय परिवर्तन हो गया । महाराज श्री ने जब दीक्षा ली थी, तब लक्ष्मीचंदभाई को बहुत नाराजगी थी, किन्तु अब महाराजश्री की विद्वता, अद्‌भूत व्याख्यान शैली और चुस्त संयम पालन देखकर अपने पुत्र के लिए गर्व का अनुभव करने लगे। उन्हें भी वैराग्य और ज्ञान का रंग लग गया था । वे उपाध्याय श्री यशोविजयजी के ग्रंथों का परिशीलन जीवन के पिछले वर्षों में नियमित करते रहे ।

चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराजश्री ने प्रयाण किया । भोयणी तीर्थ की यात्रा करते हुए वे कलोल पधारे । वहां के देरासर के जीर्णोद्धार की आवश्यकता थी अतः अहमदाबाद आकर उसके लिए उपदेश देने पर एक श्रेष्ठी ने उसकी संपूर्ण जिम्मेदारी उठा ली ।

अहमदाबाद के विराम के दौरान महाराजश्री ने चार मुमुक्षुओं को अहमदाबाद में दीक्षा दी और मुमुक्षुश्री उजमशीभाई घीया के परिजनों का विरोध होने से मातर के पास देवा नामक गांव मे दीक्षा दी । ये उज़मशीभाई अर्थात मुनि उदयविजयजी को उनके परिवारजनों की इच्छानुसार बडीदीक्षा खंभात में दी गई और सं. १९६२ का चातुर्मास महाराजश्री ने खंभात में ही किया और उस दौरान अपने शिष्यों को शास्त्राभ्यास करवाया ।

खंभात के चातुर्मास के बाद सुरत संघ के आग्रहवश महाराजश्रीने चातुर्मास सुरत में करने के लिए विहार (प्रयाण) किया । किन्तु बोरसद में एक शिष्य मुनि नयविजयजी कालधर्म को प्राप्त हुए । उस समय प्लेग का रोग फैला था, उसका प्रभाव दो शिष्यों को होने से महाराज श्री को शिविर में रहना पड़ा । सद्भाग्य से शिष्य स्वस्थ हो गए । किन्तु तत्पश्चात् महाराजश्री को ज्वर और संग्रहणी हो गए । अंततः सुरत के चातुर्मास का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा । स्वस्थ होने पर वे विहार करके अहमदाबाद आए ।

खंभात में प्रतिष्ठा, हस्तप्रतों की व्यवस्था, कन्याशालाकी स्थापना :

उसके बाद महाराजश्री छाणी, वडोदरा, डभोई, इत्यादि स्थलों पर विहार करते हुए खंभात पधारे, क्योंकि यहां उनके हस्तकमलों से जीरावला पाडा के १९ गभारावाले चिंतामणि प्रार्श्वनाथ के देरासर की प्रतिष्ठा होने वाली थी । प्रतिष्ठा विधि महोत्सवपूर्वक पूर्ण हुई। महाराजश्री ने वि.सं. १९६३ का चातुर्मास भी खंभात में किया ।

अहमदाबाद के बाद महाराजश्री के धर्मप्रचार का विस्तृत क्षेत्र खंभात था । उन्होंने यहां भंडारो की हस्तप्रतों को व्यवस्थित करवाया, तथा कन्याओं की प्राथमिक शिक्षाके लिए श्री वृद्धिचंद्रजी जैन कन्याशाला की स्थापना करवाई ।

चातुर्मास के बाद महाराजश्री विहार करते हुए अहमदाबाद होकर कलोल पधारे । वहां प्रतिष्ठा करवाकर भोयणी, शंखेश्वर, इत्यादि तीर्थों की विहार यात्रा करते करते वे भावनगर पधारे । भावनगर में जैन श्वेतांबर कोन्फरन्स का आयोजन शेठ मनसुखभाई भगुंभाई की अध्यक्षता में हुआ । इस अधिवेशन में महाराजश्री प्रतिदिन भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान देते थे । उनका व्याख्यान इतना तार्किक और विद्वतापूर्ण होता था कि सुनने के लिए भावनगर राज्य के दीवान सर प्रभाशंकर पट्टणी, गायकवाडी सुबा, जुनागढ के दीवान तथा अन्य राज्याधिकारी भी आते थे ।

भावनगर में आचार्यपद-प्रदान :

भावनगर की इस जैन कोन्फरन्स में देशभर से प्रतिनिधि आए थे । कोन्फरन्स के आगेवानो ने उस समय पंन्यास श्री गंभीरविजयजी तथा श्री मणिविजयजी के साथ विचार विमर्श किया कि तपगच्छ में कोई आचार्य नहीं है । पंन्यासश्री गंभीरविजयजी ने उन्हें पदवी प्रदान करें ऐसे आदरणीय मुनिराज न होने से तथा शरीर की अशक्ति के कारण इस जिम्मेदारी को स्वीकार करने से स्पष्ट अनिच्छा प्रकट की । विधिपूर्वक योगोद्वहन क्रिया हो और शासन की जिम्मेदारी संभाल

सके ऐसे समर्थ व्यक्ति के रूप में उन्हें पंन्यास श्री नेमिविजयजी में पूर्ण योग्यता दृष्टिगोचर हुई । अतः उन्होंने भावनगर के संघ के तथा बाहरगांव से पधारे संघ के आगेवानों के समक्ष यह प्रस्ताव रखा और सभी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया । इस प्रकार ज्येष्ठ सुदी पंचमी के दिन भावनगर में अट्ठाई महोत्सवपूर्वक अत्यंत धाम-धूम के साथ पंन्यास श्री नेमिविजयजी को आचार्यकी पदवी प्रदान की गई । भारत के अनेक नामांकित जैन इस महोत्सव में उपस्थित रहे थे । शुभेच्छा धन्यवाद के अनेक तार एवं पत्र आए थे । महाराजश्री की आचार्य की पदवी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना बनगई ।

भावनगर संघके आग्रह से पंन्यास जी महाराज ने आचार्यश्री विजयनेमिसूरी ने चातुर्मास भावनगर में किया । भावनगर का चातुर्मास पूर्ण होने के बाद महाराजश्री की निश्रा मे सिद्धाचलजी की यात्रा के लिए संघ निकला । पालीताणा से महाराजश्री महुवा पधारे । रास्ते में नैप नामक गांव समुद्रकिनारे आता है । वहां के एक वैष्णव भाई नरोत्तमदास ठाकरशी ने महाराजश्री से जैन धर्म अंगीकार किया।

मच्छीमारों को प्रतिबोध :

महाराजश्री ने देखा कि समुद्रकिनारे बसने वाले मच्छीमार मछली मारने का घोर हिंसा - कार्य करते हैं, इसके लिए उन्हें बोध देना चाहिए । इस कार्य में नरोत्तमभाई का सहकार उपयोगी सिद्ध हुआ । महाराजश्री उनके साथ समुद्रकिनारे गए । उन्हें देखकर मच्छीमार आश्चर्यचकित हुए । महाराजश्री ने सभी को एकत्रित करके उपदेश

दिया । पाप की प्रवृत्ति का व्यवसाय छोड देने से अन्य निर्दोष व्यवसाय में अधिक कमाई होती है, इस बात पर जोर दिया । सभी ने मछली न मारने की प्रतिज्ञा ली । उन्हें आजीविका में कोई मुसीबत हो तो सहायता करने का और उचित कामधंधे में लगाने का वचन नरोत्तमभाई ने दिया । मच्छीमारों के पास से मछली पकडने का जाल नरोत्तमभाई ने ले लिया । सभी जाल एकत्रित करके दाठा गाँव के बाजार में सबके बीच नरोत्तमभाई ने उसकी होली जलाई । मच्छीमार अन्य व्यवसाय में जुट गए और पैसे टके से सुखी हुए ।

यह हिंसा रोकने के अतिरिक्त महाराजश्री ने उस विस्तार के लोगों को उपदेश देकर नवरात्रि में पाडा, बकरा वध इत्यादि प्रथा बंध करवाई ।

अंतरीक्षजी विवाद : योग्य सलाह सूचन :

इस दौरान महाराजश्रीको समाचार प्राप्त हुए कि श्री सागरजी महाराज अंतरीक्षजी तीर्थ में विवाद में फंस गए हैं । विवाद कोर्ट तक पहुंच गया है । यह जानकर महाराजश्री ने आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी के आगेवानों तथा कानून के निष्णातों (कानूनगो) को बुलवाकर उन्हें उचित सलाह सूचना देकर अंतरीक्षजी भेजा इससे पेढ़ी को कोर्ट में केस लडने में सफलता प्राप्त हुई और सागरजी महाराज की मुसीबत दूर हूई ।

महाराज श्री दाठा से बिहार करते हुए महुवा पहुंचे और चातुर्मास वहीं किया । महुवा में चातुर्मास के दौरान महाराज श्री के

संसारी माताश्री ने तथा छोटेभाई ने अच्छी धर्माराधना की । महाराजश्री की निश्रा में कुछ महत्वपूर्ण कार्य हुए और चातुर्मास के अंत में सिद्धाचल जी का संघ निकाला ।

कदम्बगिरि में कार्य सिद्धि :

सिद्धाचल तीर्थ की यात्रा करके वि.सं. १९६६ में महाराजश्री अपने शिष्यों के साथ विचरण करते हुए बोदा के नेस पधारे । कोली, भरवाड इत्यादि लोगों के नेसडा जैसे गाँवों का यह विस्तार था । दरबार, गरासियों के अधिनस्थ ये गांव थे । बोदा के नेस अर्थात प्राचीन कदम्बगिरि का विस्तार । कदम्बगिरि अर्थात सिद्धगिरि बारह गांवों के विस्तार में आए पांच शिखरों में से एक शिखर । संप्रतिनामक तीर्थकर-भगवान के कदम्ब नामक गणधर भगवंत का एक करोड मुनियों के साथ इस गिरि पर निर्वाण हुआ था । तब से यह गिरि कदम्बगिरि के रूप में जाना जाता है । सिद्धाचल के बारह गांवों की जब प्रदक्षिणा होती थी तब उस प्रदक्षिणा में सबसे पहले कदम्बगिरि आता था । इस प्राचीन पुनित तीर्थ की ऐसी अवदशा देखकर उसका उद्धार करने की भावना महाराजश्री के हृदय में जागृत हुई । वे इस प्रदेश में भ्रमण कर चुके थे और अनेक लोगों को चोरी, खून, शराब द्यूत, तमाकु इत्यादि प्रकार के पापकार्यों से मुक्त करवाया था । अतः लोगों को महाराजश्री के प्रति आदरभाव बहुत था । इसलिए महाराजश्री ने इस गांव के दरबार श्री आपाभाई कामलीया के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की और उन्हें लेकर महाराजश्री शिखर पर गए और तीर्थोद्धार

के लिए इच्छित जमीन बताई । आपाभाई ने वह जमीन भेंट में देने की भावना बताई किन्तु महाराजश्री ने कहा हमें भेंट में नहीं चाहिए । शेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढी को आप उचित मूल्य में दो । आपाभाई का भक्ति भावपूर्वक बहुत आग्रह होते हुए भी महाराजश्री ने दस्तावेज का अस्वीकार किया । अंततः दस्तावेज में महाराजश्री ने उस गांव के लोगों पर किए गए उपकार का निर्देश दस्तोवेज में करवाया जाय इस शर्त पर पेढी को जमीन बेची गई।

बोदा के नेस से महाराजश्री चोक, रोहिशाला, भंडारिया, इत्यादि गांवों में विचरण करते करते पुनः चोक पधारे । उस समय एक दिन श्री उदयसूरि महाराज का स्वास्थ्य अचानक बिगड गया और वे बेहोश हो गए । कोई जानलेवा बीमारी की संभावना थी। उन्हें पालीताणा ले आए । सदभाग्य से समय पर उपचार होने से उनकी तबियत अच्छी हो गई । चैत्र महिना था अतः महाराजश्री पूनम तक पालीताणा रूके और पूनम की यात्रा कर महाराजश्री विहार करते करते वला होकर बोटाद पधारे ।

बोटाद के चातुर्मास के दौरान महाराजश्री ने अपने व्याख्यानों और उपदेशो के द्वारा विविध प्रकार के धर्मकार्य करवाए । एक किंवदन्ति के अनुसार बोटाद के उस समय के जादूगर महमद छेल महाराजश्री से मिलने आए थे । उन्होंने एकाद जादू के प्रयोग करके महारजश्री को प्रभावित करने का प्रयत्न किया । किन्तु महाराज श्री ने स्वयं एक चमत्कार बताकर महमद को प्रभावित कर दिया और समझाया

कि साधना के मार्ग में चमत्कारों का विशेष मूल्य नहीं है । अतः उसमे नहीं फँसला चाहिए ।

लींबडी में स्थिरता : लींबडी नरेश प्रभावित

महाराजश्री की कीर्ति चारों ओर फैल रही थी । इतने में लींबडी के राजा को मालूम हुआ कि चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराज श्री अहमदाबाद की ओर जाने वाले हैं । उन्होंने तब लींबडी पधारने के लिए विशेष आग्रह किया । महाराजश्री जब लींबडी पधारे तब उन्होंने महाराज श्री का भव्य स्वागत किया और महाराजश्री के व्याख्यान में प्रतिदिन उपस्थित रहना प्रारंभ किया । इससे समस्त प्रजा पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और महाराजश्री के व्याख्यान में जैन जैनेतर वर्ग बहुत बडी संख्या में उपस्थित रहने लगा । लींबडी में कुछ दिन रुकने का विचार - किया था उसके स्थान पर राजा के विशेष आग्रह का सम्मान करते हुए एक मास तक रूकना पड़ा । वे महाराजश्री के तथा उनके शिष्यों के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखते थे और आवश्यक सभी औषधियां मंगवा देते थे । लींबडी नरेश का इतना उत्साह देखकर महाराजश्रीने उनसे जीवदया के भी अच्छे कार्य करवाए तथा लींबडी के हस्तप्रत भंडारों को भी व्यवस्थित और समृद्ध किया ।

महाराजश्रीने तत्पश्चात वि.सं. १९६७ का चातुर्मास अहमदाबाद में किया । महाराजश्री ६ वर्ष बाद अहमदाबाद पंधारे थे, अतः श्रोताओं की इतनी भीड होती थी कि उपाश्रय के स्थान पर खुले में मंडप

बांधकर व्याख्यान रखा जाता था । व्याख्यान के लिए महाराजश्री ने 'भगवतीसूत्र' तथा 'समराइच्च कहा' इन दो को पसंद किया था । अहमदाबाद के इस चातुर्मास के दौरान एक ऐसी महत्व पूर्ण घटना बनी कि अहमदाबाद के श्रेष्ठी शेठ अंबालाल साराभाई का किसी सामान्य कारण से विवाद बढने पर जाति से बाहर करने की दरखास्त आई थी । तब उसमें मध्यस्थी करके महाराजश्री ने इस प्रकरण का सुखद अंत किया था ।

इस चातुर्मास के दौरान महाराजश्री ने पशु सुरक्षा गृह के कार्य अधिक सुदृढ बनाए । कतलखाने ले जाई जानेवाली भैसों को रोककर उन्हें पशु सुरक्षागृह में रखने में अधिक निर्वाह खर्च की आवश्यकता थी । अतः महाराजश्री ने व्याख्यानों में ऐसी हृयद-द्रावक प्रार्थना की कि फौरन बहुत सा धन एकत्रित हो गया ।

शेरीसा में प्राचीन प्रतिमा-अवशेषों : सुरक्षा :

चातुर्मास के पश्चात उत्तर गुजरात में विचरण करने के पश्चात महाराजश्री का विहार अहमदाबाद की ओर था । मार्ग में कलोल शहर में डेरा डाला । उस समय कलोल के दो श्रेष्ठीयों ने उनसे कहा कि चारेक मील पर एक शेरीसा गांव है वहां एक जैन मंदिर के प्राचीन अवशेष अस्त व्यस्त प्राप्त होते हैं । गांव में जैनों की कोई बस्ती नहीं है ।

महाराज श्री ने प्राचीन शेरीसा पार्श्वनाथ तीर्थ के इतिहास की जानकारी की । राजा कुमारपाल के समय में नागेन्द्रगच्छीय देवेन्द्रसूरि

ने वहां पार्श्वनाथ भगवान की चमत्कारी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी । तब से शेरीसा तीर्थ बहुत प्रसिद्ध हुआ । १३ वीं सदी में वस्तुपाल और तेजपाल ने इस तीर्थ में दो देवकुलिका बनाकर एक में नेमीनाथ भगवान की और दूसरी में अंबिका देवी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी । इस प्रकार उत्तरोत्तर इस तीर्थ की महिमा बढती गई । विक्रम की अठारवीं सदी में मुसलमान आक्रमणकारों ने गुजरात में कुछ हिन्दु और कुछ जैन मंदिरों का वध्वंस किया उससे शेरीसा तीर्थ भी बच नहीं पाया । मंदिर धराशायी हो गया । नगर के लोग नगर छोडकर भाग गए । हजारों यात्रियों से उमडता तीर्थ विरान हो गया । मंदिर के अवशेष काल बितने पर दब गए ।

इस नष्ट हुए तीर्थ के अवशेष देखने की महाराजश्री ने इच्छा प्रकट की । अतः श्रेष्ठी गोरधनभाई ने पहले से शेरीसा गांवमें पहुंचकर एक परिचित के घर में महाराजश्री और उनके शिष्योंके विराम की व्यवस्था की । महाराज श्री विहार करके शेरीसा पहुंचे । वहां के अवशेष देखते ही उन्हें विश्वास हो गया कि जैन मंदिर के ही अवशेष है । महाराज श्री शिखरों पर पुनः निरीक्षण करने लगे । शाम को वापस आकर वे निकले । उस समय महाराज श्री ने काला, नीला सपाट पत्थर देखा । वह जमीन में दबा हुआ था । उस पर कंडे (गोबर के) थापे गए थे । महाराज श्री को लगा कि इस पत्थर को अवश्य खुदवाकर बाहर निकालना चाहिए । गांव में से मजदूरों को बुलवाकर पत्थर अखंडित निकले इस प्रकार सावधानी से खोदना

प्रारंभ किया । गांव के बहुत से लोग एकत्रित हो गए महाराजश्री और उनके शिष्य भी उपस्थित थे । पत्थर निकालते ही आश्चर्य की सीमा न रही । उस प्रतिमा के दर्शन करके ही महाराज श्री ने गद्‌गद कंठ से स्तुति की ।

ऐसे अखंडित निकले अवशेषों को फौरन संभालना चाहिए। खुले में पडे रहे वह ठीक नहीं है । महाराज श्री ने कहा कि अभी ही शेठ मनसुखभाई भगुभाई के नाम से ताला लगा सकें ऐसी जगह खरीद लो । खोज करते हुए एक अहीर का बरामदा गोरधनभाई ने खरीद लिया । उसके बाद दूसरे दिन मजदूरों से सभी अवशेष उठवाकर बरामदे में सुरक्षित रखवा दिए गए ।

महाराज श्री ने पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा के सन्मुख बैठकर स्तुति की । काउसग्ग ध्यान किया और संकल्प किया कि इस तीर्थ का उद्धार शासन देवी की कृपा से मैं अवश्य करवाऊंगा ।

इस प्रकार प्राचीन शेरीसा तीर्थ के जीर्णोद्धार का प्रारंभ हुआ ।

महाराज श्री वहां से विहार करके ओगणज पधारे । मार्ग में भटक गये थे, परन्तु शासन देव की अलौकिक कृपा से सही मार्ग की ओर मुड गए थे । ओगणज से महाराज अहमदाबाद पधारे । वहां आकर महाराज श्री ने श्रेष्ठीयों को शेरीसा तीर्थ के इतिहास की और उस तीर्थ के जीर्णोद्धार की बात की । उस समय टीप करने की बात चली किन्तु जीर्णोद्धार के लिए पच्चीस हजार रुपए

की आवश्यकता थी । अतः शेठ श्री मनसुखभाई ने वह रकम अकेले ही देने की घोषणा की ।

महाराज श्री ने चातुर्मास के लिए पांजरा पोल के उपाश्रय में प्रवेश किया । इस चातुर्मास के दौरान एक महत्व का कार्य महाराज श्री ने ये किया कि तीर्थ की रक्षा के लिए स्थापित आणंदजी - कल्याणजी की पेढी के ढांचे की पुनर्रचना में उन्होंने बहुत सुंदर मार्गदर्शन दिया ।

चातुर्मास के बाद थोडे समय में महाराज श्री के अनन्य भक्त मनसुखभाई का अचानक अवसान हो गया । इससे महाराज श्री का एक परम गुरुभक्त समाज ने खो दिया । उनके निधन के पश्चात उनके सुपुत्र शेठ श्री माणेकलाल भाई बहुत से महत्व के कार्यों मे उतनी ही उदारता से आर्थिक सहायत करने लगे ।

तत्पश्चात महाराज श्री विहार करते - करते कपडवंज पधारे । यहां उनका चातुर्मास निश्चित हुआ था । कपडवंज में महाराजश्री के तीन शिष्यों श्री दर्शनविजयजी, श्री उदयविजयजी तथा श्री प्रतापविजयजी को गणिपद प्रदान किया गया था । इस महोत्सव में इतने लोग कपडवंज आए थे कि रेल्वे को विशेष (स्पे.) ट्रेन की व्यवस्था करनी पडी थी । इस उत्सव में एक ऐसी चमत्कारिक घटना बनी कि बरसात के उन दिनों में वर्षा ही होती रहती थी किन्तु गणि पदवी की क्रिया के समय, नवकाशी के समय अचानक बरसात रूक गई और वह कार्यक्रम पूर्ण होते ही बरसात पुनः शुरु हो गई ।

कपडवंज का चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराज श्री अहमदाबाद पधारे उस दौरान समाचार आए कि खेडा में उनके शिष्य मुनि यशोविजयजी की तबियत बहुत गंभीर हो गई है और वे गुरु महाराज के दर्शन के इच्छुक है । अत:महाराजश्री ने खेडा की ओर विहार किया । किन्तु वे पहुंचे उससे पूर्व यशोविजयजी कालधर्म को प्राप्त हुए । इस तरह उनका असमय कालधर्म होने पर एक तेजस्वी शिष्यरत्न महाराज श्री ने खो दिया ।

महाराज श्री अहमदाबाद वापस आए । उनके अन्य शिष्य भी अहमदाबाद आ पहुंचे । इस समय दीक्षा के प्रसंग मनाए गए । तत्पश्चात तीर्थ रक्षा के संदर्भ में शत्रुंजय, गिरनार, समेतशिखर, तारंगाजी देशी राज्यों की मध्यस्थी के कारण कोर्ट में जो केस चल रहे थे, महाराज श्री उस संदर्भ में संघों को तथा आणंदजी कल्याणजी की पेढी को आवश्यक मार्गदर्शन देते रहे । इसमें महाराज श्री को कुदरती रूप से प्राप्त कानूनी सुझ और दक्षता के दर्शन होते थे । उनकी सलाह अवश्य सच होती थी । जो लोग ये अभिप्राय रखते थे कि साधु महाराजों को कानून की बात क्या समझ में आए? ऐसे बेरिस्टरों को भी यह स्वीकार करना पडता था कि इस विषय में महाराज श्री गहरी समझ रखते हैं । एक बार डो. हर्मन जेकोबी भारत आए तब कहा था कि विजयनेमिसूरि और विजयधर्म सूरि ये दो महात्मा यदि साधु जीवन में न होते तो कोई बडे राज्य के दीवान होते । समग्र राज्यतंत्र चला सके ऐसी बुद्धि, व्यवहार, दक्षता, मनुष्य की पहचान और दीर्घदृष्टि उनके पास है ।

जावाल में चातुर्मास : (सं. १९७१)

अहमदाबाद से महाराज श्री कडी, पानसर, भोयणी, महेसाणा, तारंगा, कुंभारियाजी इत्यादि तीर्थों में विहार करते हुए आबू पहुंचे । आबु में आठ दिन का विराम कर महाराज श्री अचलगढ, सिरोही पाडीव इत्यादि स्थलों पर विहार करते करते जावाल पधारे । जावाल एक छोटा सा गांव माना जाता है । परन्तु इस गांव के श्रावकों की धर्मभावना और आग्रह देखते हुए महाराज श्री ने वि.सं. १९७१ का चातुर्मास जावाल में करने का निर्णय लिया । इस चातुर्मास के विराम के दौरान महाराज श्री ने गांव के लोगों को प्रेरणा दी-पाठशाला की स्थापना करवाई, नया उपाश्रय बनवाया, पशु सुरक्षा गृह की स्थापना की नूतन देरासर के लिए वाडी खरीदवा कर आसपास के गांवों के बीच चल रहे संघर्ष का निराकरण करवाया । तदुपरांत जावाल में दीक्षा महात्सव का आयोजन हुआ । बोटाद के श्री अमृतलाल तथा राजगढ के श्री प्यारेलाल को दीक्षा दी गई और अमृतलाल का नाम मुनि श्री अमृतविजयजी तथा प्यारेलाल का नाम मुनि श्री भक्तिविजयजी रखा गया । जावाल के श्रावकों का भक्तिभाव और उत्साह देखकर महाराज श्री की प्रेरणा से पालीताणा में धर्मशाला बांधने का निर्णय प्रकट किया गया और तदनुसार पालीताणा में आणंदजी कल्याणजी की पेढी के बरामदे में जावाल वाला की धर्मशाला बनी ।

साधु महात्माओं के नैष्टिक अखंड ब्रह्मचर्य और करुणाभरी संयमशील साधना का प्रभाव पडे बिना नहीं रहता है । महाराज श्री के जीवन में भी ऐसी कुछ घटनाएं अंकित है ।

महाराजश्री पेटलाद से विहार कर कासोर गांव में पधारे । यहां एक श्रावक के छोटे बेटे को बार-बार उल्टी होती थी, कभी कभी थूंक में खुन आता था । बहुत उपचार करते हुए वह ठीक नहीं होता था । महाराज श्री गांव में पधारे और व्याख्यान शुरु हुआ उस समय वह श्रावक अपने बेटे को लेकर व्याख्यान में आकर बैठा । व्याख्यान के दौरान लडके को बहुत राहत हुई अतः व्याख्यान के बाद भी लडका उपाश्रय में महाराज श्री के पास बैठा रहा । इस तरह चार पांच घंटे में उसे थूंक में खून नहीं आया । अतः उन्होंने लडके से कहा "भाई थोडी देर बाहर जाओ हम गोचरी का उपयोग कर लें ।" लडका जैसे ही उपाश्रय से बाहर गया कि फौरन उसके थूंक से खून आने लगा । गोचरी पूर्ण होने पर वह वापस उपाश्रय में आकर बैठा कि खून बंद हो गया ।

इस घटना की बात जानकर लडके के माता पिता को लगा कि अवश्य महाराज श्री के प्रभाव से ही इस प्रकार हुआ होगा । वे सब महाराज श्री के पास आए और संपूर्ण घटना बताई और लडके को ठीक कर देने की प्रार्थना की ।

महाराज श्री ने कहा कि : "हम कोई डोरा-धागा या चमत्कार नहीं करते ।" बाद में लडके से कहा कि "तू नियमित भावपूर्वक नवकार मंत्र गिनना तेरा रोग मिट जाएगा ।" लडके ने इस प्रकार नियमित नवकार मंत्र गिनना प्रारंभ किया और जैसे चमत्कार हो गया हो वैसे उसका रोग हमेंशा के लिए चला गया ।

मारवाड में विहार :

जावाल के चातुर्मास के बाद महाराज श्री मारवाड और मेवाड में विचरे । उन्होंने वरकाणा, वीजोवा, नादोल, नाडलाई, घाणेराव, भूछाला महावीर, देसूरी, सांखिया, गढबोल इत्यादि स्थलों का विहार किया । उन दिनों में इन कुछ क्षेत्रों में विहार की, शुद्ध आहार पानी की, रात्रि विश्राम करने की बहुत तकलीफ थी । मूर्तिपूजकों के घर कम थे । अन्य समुदायों के साथ संघर्ष चलता था । महाराज श्री ने इन सभी स्थलों पर विचरण-करके अपनी व्याख्यानशैली से और व्यक्तिगत मिलने आनेवालों को सुंदर ढंग से समझाकर बहुतों का हृदय-परिवर्तन करवाया । जहां-जहां शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देने की स्थिति उठती वहां अन्य पक्ष अंतिम समय उपस्थित न रहता था । गढबोल में तो अगले वर्ष अन्य पक्ष की ओर से तीर्थंकर भगवान की प्रतिमा को कीले मारे गए थे । वहां महाराज श्री ने अपनी सूझ-बूझ और दीर्घदृष्टि से काम लेकर अन्य पक्ष के लोगों को शांत कर दिया था । बहुत से स्थान पर कई परिवारों को सच्चे धर्म की ओर मोडा था । भिन्न-भिन्न स्थलों पर विहार - यात्रा कर महाराज श्री चातुर्मास सादडी में किया ।

जेसलमेर का ६ 'री' पालित संघ :

वि.सं. १९७२ के सादडी के चातुर्मास के दौरान सिरोही राज्य के पालडी गांव में दो श्रेष्ठी महाराजश्री के पास आए । उन्होंने महाराजश्री से प्रार्थना की कि सिद्धाचल का ६'री' पालक संघ निकालने

की उनकी भावना है और उसका तमाम खर्च वे स्वयं उठाएंगे । महाराज श्री ने उन्हें कहा कि 'भाईयों हम गुजरात की ओर से अभी ही मारवाड आए हैं और तुरंत ही वापस गुजरात जाने की अनुकूलता नहीं है परन्तु यदि संघ निकालना ही हो तो जेसलमेर का निकालो क्योंकि हमें अभी उस क्षेत्र में विचरण करने की इच्छा है ।'

सादडी के उन श्रेष्ठीओं ने महाराज श्री का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया । इतना ही नहीं किन्तु उन्हें सिद्धाचलजी का संघ निकालने की भावना थी उसके प्रतीक स्वरूप उन्होंने आणंदजी कल्याणजी की पेढी को पांच हजार रुपये भेज दिए ।

महाराज श्री विहार करके पालडी गांव पधारे और शुभ दिन देखकर महाराज श्री की निश्रा में संघ ने जेसलमेर की तीर्थयात्रा के लिए प्रयाण किया ।

गांव-गांव का भ्रमण करते हुए संघ फलोधी आ पहुंचा। इस प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थस्थल में लंबे अरसे से मतभेद चल रहा था और दो पक्ष हो गए थे । यह बात महाराजश्री के पास आई । महाराज श्री को फलोधी के संघ में एकता करवाने की भावना उत्पन्न हुई । किन्तु कुछ लोगों ने महाराज श्री को परामर्श दिया कि: 'यहां बडे-बडे महात्मा आ गए किन्तु उनसे भी यहां का कलह शांत नहीं हुआ । अतः इसमें पडने जैसा नहीं है । किन्तु महाराज श्री ने निर्णय कर लिया कि भले सफलता प्राप्त हो या न हो किन्तु उन्हें प्रयास तो अवश्य करना चाहिए । इसीलिए यदि संघ को कुछ

अधिक रुकना हो तो भी यह आवश्यक है । महाराज श्री ने दोनों पक्षों के आगेवानों को क्रमशः एकांत में बुलवाकर संपूर्ण समस्या जान ली । तत्पश्चात वे प्रतिदिन व्याख्यान में अपना उपदेश इस तरह गूंथते कि दोनों पक्षोंके आगेवानों को लगा कि इस संघर्ष का समाधान लाना ही चाहिए । आठेक दिन में तो महाराज श्री की मध्यस्थी से संघ में समाधान हो गया और शांति स्थापित हो गई । उसके प्रतीक रूप दोनों पक्ष की ओर से साथ मिलकर स्वामी वात्सल्य रखा गया ।

फलोधी से संघ ने जैसलमेर की ओर प्रयाण किया । अब रण प्रदेश प्रारंभ होता था और बीच-बीच में पांच सौ-हजार की बस्ती वाले छोटे-छोटे गांव आते थे । इस विस्तार में पानी की बहुत तंगी रहती थी । संघ में जब वासणा नामक गांव में डेरा डाला । तब गांव के लोगों ने बहुत विरोध किया । लोगों का कहना था कि गरमी के दिन हैं । दो-तीन वर्षों में एकाद बार यहां बरसात होती है । संघ के इतने सारे लोग पानी का उपयोग करेंगे तो एक दिन में ही हमारे गांव का सब पानी खत्म हो जाएगा । गांव के लोगों के ऐसे विरोध के बीच कितना समय रूका जाय? ये एक प्रश्न हो गया था । किन्तु महाराज श्री ने सबको शांत रहने को कहा । इतने में जैसे कोई चमत्कारी घटना बनती हो ऐसे अचानक आकाश में बादल उमड आए । गरमी के उस दिन मूसलाधार बरसात हुई । गांव में इतना अधिक पानी आया कि ग्रामजनों ने कभी नहीं देखा था । इस घटना से उनका हृदय-परिवर्तन हुआ ।

संघ ने आगे प्रयाण किया और जेसलमेर पहुंचने को आए। जेसलमेर का देशी राज्य था । संघ आया तो आवक का एक साधन खडा हो गया । ये मानकर राज के महाराजा ने मुंडका कर लगाने का विचार किया । इस बात का अनुमान आते ही महाराज श्री ने आबु के अंग्रेज रेसिडेन्ट को तार करने के लिए आगेवानों से चर्चा की । इस बात की महाराजा को जानकारी होने पर वे गभराए क्योंकि अंग्रेज रेसिडेन्ट यदि आएगा तो अन्य तकलीफें भी खडी होगी । अतः उन्होंने तुरन्त दीवान को भेजकर संघ को सूचित किया कि जेसलमेर राज्य को मुंडका वेरा लगाने की कोई इच्छा नहीं है । उसके बाद जेसलमेर के प्रवेश के समय महाराज श्री का तथा संघ का राज्य की ओर से बहुमान हुआ और धामधूम से संघ का प्रवेश करवाया । महाराजा ने महाराज श्री के लिए पालखी की भी व्यवस्था की किन्तु महाराज श्री ने साधु के आचरण के अनुरूप न होने से उसका विवेक पूर्वक अस्वीकार किया । महाराजा ने महाराज श्री को महल में पधारने के लिए निमंत्रण दिया तो लाभालाभ का विचार करके उसे स्वीकार किया और राजमहल में पधारे । इससे महाराजा पर बहुत अच्छा प्रभाव हुआ और महाराजश्री के तेजस्वी, प्रतापी व्यक्तित्व से और मधुर उपदेशवाणी से महाराजा बहुत प्रभावित हुए । जैनों को जेसलमेर की तीर्थयात्रा के लिए जैसी सुविधा चाहिए वैसी हमेशा के लिए कर देने की तत्परता उन्होंने बताई ।

जेसलमेर की तीर्थयात्रा करके संघ वापस आया । इस बार तो वासना गांव के लोगों ने उनके गांव में ही डेरा डालने का आग्रह किया । अतः संघ ने वहां डेरा डाला ।

पुनः ऐसा हुआ कि उसी दिन मूसलाधार बरसात हुई । इससे ग्रामजनों को बहुत आश्चर्य हुआ । वे महाराज श्री को झुक-झुककर प्रणाम करने लगे ।

संघ विचरण करता हुआ फलोधी आ पहुंचा । महाराज श्री ने संघ के भाईयों को बुलवाकर बता दिया कि उनकी धारना से दूगना खर्च संघ निकालने में हो गया है । इससे महाराज श्री ने ये बोझ अब से कम हो इसलिए प्रत्येक गांव की नवकारशी गांव वाले और अन्य उठा लें ऐसा प्रस्ताव रखा । किन्तु संघ के भाईयों ने कहा कि 'संघ की संपूर्ण जिम्मेदारी हमारी ही है । किसी भी तरह इस खर्च का लाभ हमें ही लेना है ।' वे अपने निर्णय में दृढ थे । उनकी दृढभावना देखकर महाराज श्री ने उनकी बात स्वीकारी और उन्हें आशिर्वाद दिये । दूसरे दिन संघ के भाईयों पर एक तार आया था । उनका मद्रास में रूईका व्यापार चलता था। तार में लिखा था कि रूई के एक सौदे में अचानक साढे तीन लाख रुपये का नफा हुआ है । महाराज श्री को यह तार पढवाते हुए संघवी भाईयों ने कहा: 'गुरुदेव देखिए आपकी ही कृपा से इस संघ का तमाम खर्च हमारे लिए इस एक सौदे में अचानक ही निकल गया है ।' यह बात संघ में फैलते ही संघ के आनंद की सीमा न रही ।

फलोधी में चातुर्मास : (सं. १९७३)

फलोधी के संघ ने महाराज श्री से चातुर्मास के लिए की प्रार्थना का महाराज श्री ने स्वीकार किया और उसके अनुसार महाराज श्री फलोधी रूके । संघ आगे प्रयाण करके पुनः पालडी गांव आया । जेसलमेर के संघ से वापस आते हुए महाराज श्री फलोधी पधारे और वि.सं. १९७३ का चातुर्मास फलोधी में करने का निश्चय किया । फलोधी (फलवृद्धि) एक प्राचीन ऐतिहासिक शहर है । यहां प्राचीन समय का एक उपाश्रय है जो चोर्यासी गच्छ के उपाश्रय के रूप में प्रचलित है । इस उपाश्रय में कोई भी गच्छ के कोई भी साधु उतर सकते हैं । इस शहर की उदारता और सहिष्णुता कितनी है वह इस प्रकार के उपाश्रय से समझा जा सकता है । महाराज श्री चौभुजा के उपाश्रय में बिराजे थे और व्याख्यान देने के लिए प्रतिदिन चोर्यासी गच्छ के उपाश्रय जाते थे । यहां एक विलक्षण घटना ऐसी हुई कि प्रतिदिन एक कबूतर व्याख्यान प्रारंभ होने से पुर्व एक आरे (गोखला) में आकर बैठ जाता था और व्याख्यान पूर्ण होने पर वहाँ से उड जाता था । यहाँ के चातुर्मास के दौरान महाराजश्री ने नूतन जिन मंदिर, उपाश्रय, धर्मशाला इत्यादि बांधने के लिए उपदेश दिया था । राजस्थान में उस समय यतियों - श्री पूज्यों का प्रभाव अधिक था किन्तु महाराजश्री की विशाल उदार दृष्टि, सुन्दर वक्तृत्व और तेजस्वी मुखमुद्रा के प्रभाव के कारण यति भी महाराजश्री के व्याख्यान में आकर बैठते थे ।

राजस्थान अर्थात हस्तप्रतों का खजाना । बहुत से यति पैसे की आवश्यकता पड़ने पर हस्तप्रतें बेचने निकलते थे । कुछ जातियों के अज्ञानी लोग हस्तप्रतों को भी तौलकर बेचते थे । किन्तु महाराजश्री हस्तप्रतों को तौलकर लेने से इन्कार करते थे । सरस्वती देवी को तौलकर नहीं ले सकते, ऐसा वे समझाते और श्लोकों की गिनती और पृष्ठसंख्या के आधार पर हस्तप्रत लेने का प्रस्ताव रखते थे । ऐसी कई दुर्लभ पोथियाँ महारापश्री श्रावकों को कहकर खरीदवा लेते जिससे वे नष्ट न हो जाय ।

फलोधी से महाराज श्री बीकानेर पधारे । यहां, तपगच्छ, खतरगच्छ, कमलागच्छ, वगेरे के मतभेद थे किन्तु महाराजश्री ने उदार समन्वय दृष्टि रखी थी । बीकानेर में महाराजश्री को मिलने जयदयाल नामक एक विद्वान हिन्दू पंडित आए थे । पंडित जयदयाल को जैन धर्म में रूचि थी । उन्होंने कुछ अभ्यास भी किया था । उन्हें सिद्धचक्र के नवपद के नवरंग क्यों है यह जानने की जिज्ञासा थी । महाराजश्री ने उसके विषय में समझ दी, इससे उन्हें बहुत संतोष हुआ । इन्ही पंडित जयदयाल शर्मा ने 'नवकारमंत्र' के संबंध में कुछ प्राचीन संस्कृत प्राकृत कृतियों का हिन्दी में अर्थ विस्तार कर मूल्यवान ग्रंथ प्रकाशित किया था ।

कापरडाजी का तीर्थोद्धार : एक चुनोती :

महाराजश्री सं. १९७३का चातुर्मास फलोधी में पूर्णकर बीकानेर, नागोर, मेडता, जेतारण इत्यादि स्थलों का विहार करके कापरडाजी के

पास के बिलाडा नामक गांव में पधारे थे । वहां के आगेवान श्रावक श्री पन्नालालजी शराफ को भावना हुई कि पू. महाराजश्री यदि कापरडा तीर्थ का उद्धार कार्य हाथ में लें तो वे अवश्य अच्छी तरह पूर्ण हो सकता है । किन्तु कापरडाजी तीर्थ के उद्धार का कार्य सरल न था । इस प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थ में वि.सं. १६७८ में जिनमंदिर में मूलनायक की प्रतिष्ठा हुई थी उस समय जोधपुर राज्य के सुबेदार श्री भाणाजी भंडारी थे । राज्य की ओर से मुसीबत आ पड़ने से एक यतिजी ने उनकी सहायता की थी । उनके आशिर्वाद से उन्होंने कापरडा में चार मंजिलवाला चौमुखी जिनमंदिर बनवाया था । इसमें गांव के बाहर की जमीन में से निकले श्री स्वयंभू पार्श्वनाथ भगवान का जिनबिंब सहित चार जिनबिंब की प्रतिष्ठा महोत्सवपूर्वक की गई थी ।

यह कापरडाजी तीर्थ उस समय में एक प्रख्यात तीर्थ बन गया था ।

लगभग ढाई तीन सदी से अधिक समय इस तीर्थ की महिमा बहुत रही । किन्तु २०वीं सदी के प्रारंभ में राजद्वारी परिस्थिति और कुदरती आपत्तियों के कारण कापरडाजी की वैभव समृद्धि घटती गई और जैन परिवार आजीविका के लिए अन्यत्र स्थलांतर करते गए। इसी तरह कापरडाजी में जैनों की कोई विशेष बस्ती न रही ।

कापरडाजी के इस जिनमंदिर में खतरगच्छ के श्रावकों ने चामुंडा माताजी तथा भैरवनाथ जी देव-देवी की दो देहरी बनवाई ।

इन देव-देवियों की महिमा इतनी बढ़ गई थी कि जैनों के अतिरिक्त आसपास के स्थानिक जैनेतर लोग विशेषत: जाट जाति के लोग उनकी बाधा या मनौती रखते थे । दर्शन करने वालों में जैनेतर वर्ग भी बहुत अधिक था । समय बीतते छोटे बच्चों के बाल उतरवाने के(मुंडन) लिए भी वे कापरडाजी जिनमंदिर में आते थे । जैनों की बस्ती जब घटती गई और दर्शनार्थियों में मुख्य जाट जाति के लोग ही रह गए तब इस तीर्थ की आशातना इतनी बढ़ गई कि चामुंडा माता की दहलीज के सामने बकरे का वध भी होने लगा । पशुबलि की यहाँ परंपरा चलने लगी । दूसरी और मंदिरके निर्वाहके लिए कोई व्यवस्था न होने से मंदिर जर्जरित हो गया ।

महाराजश्री जब कापरडाजी के जिनमंदिर में पधारे तब उसकी हालत देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया । उन्होंने उस तीर्थ का उद्धार करने का संकल्प किया । किन्तु इसके लिए हिम्मत और सूझ-बूझ की आवश्यकता थी । जीर्णोद्धार का कार्य क्रमानुसार करने की आवश्यकता थी ।

महाराजश्री ने सबसे पहले तो तीर्थ का अधिकार जैनों के हाथ में आए ऐसी कानूनी व्यवस्था करवाई । उसके बाद उन्होंने गढ़ के अंदर की साफ-सूफी करवाई । महाराजश्री को लगा कि मंदिर में स्वयंभू पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिदिन नियमित पूजा होनी चाहिए । जाट लोगों के बीच आकर कोई भी हिम्मतपूर्वक रहे और प्रतिदिन जिन प्रतिमा की पूजा करे ऐसे एक व्यक्ति के रूप में

पालीनगर के श्री फूलचंदजी नाम के एक गृहस्थ को नियुक्त किया । इस तरह तीर्थ कुछ जीवंत और जागृत बना । महाराजश्री को लगा कि जैनों में इस तीर्थ की जानकारी हो तथा लोगों का भाव जागृत हो इसके लिए इस तीर्थ की यात्रा का एक संघ निकालना चाहिए । इसके लिए पाली के श्री किसनलालजी ने आदेश माँगा उसके अनुसार महाराजश्री ने संघ निकालकर कापरडाजी की ओर विहार किया । इससे कापरडाजी तीर्थ के जीर्णोद्धार के लिए महाराजश्री के गुजरात और राजस्थान के अग्रगण्य भक्तों को कापरडाजी में प्रतिमाओं की पुनः प्रतिष्ठा करने की भावना जागी ।

संघ कापरडाजी पहुँचे तब तक मुनीम पनालालजी को चामुंडा माता की देहरी हटाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी । जाट लोगों के विरोध के बीच उन्होंने समझदारी से चामुंडा माता की देहरी गढ में अन्यत्र हटवाई थी । अब भैरवनाथ की देहरी हटाने का प्रश्न था ।

कापरडाजी तीर्थ के जीर्णोद्धार की समस्या गंभीर प्रकार की थी । जीर्णोद्धार के लिए फंड एकत्रित करना, जाट जाति के लोगों के बीच जीर्णोद्धार का कार्य करवाना और पशु-बलि रोककर देव-देवियों की देहरी हटाकर पुनः स्थापित करवाना इत्यादि कार्य सरल न था ।

महाराजश्री को वन्दन करने आनेवाले श्रेष्ठीयों को कापरडाजी तीर्थ में जीर्णोद्धार की प्रेरणा देने से थोडे दिन में उसके लिए एक

अच्छी रकम लिखी गई और काम भी प्रारंभ हो गया । महाराजश्री के हाथों प्रतिष्ठा करवाना भी निश्चित हो गया । इसके लिए तैयारियाँ प्रारंभ हो गई ।

कापरडाजी में महाराजश्री की निश्रा में वि.सं. १९७५ की महासुदी पंचमी को प्रतिष्ठा महोत्सव प्रारंभ हुआ । हजारो भावुक कापरडाजी पधारे । इतना भव्य उत्सव जाट लोगों को कष्टदायी हो स्वाभाविक ही था । उन्हें ये पसंद न था कि जैनों का तीर्थ उनके हाथ से पुनः जैनों के हाथ चला जाय । प्रतिष्ठा महोत्सव में विघ्न डालने के लिए जाट लोगों ने दंगा करने की गुप्त योजना बनाई थी ।

प्रतिष्ठा महोत्सवकी एक विधि के दौरान एक जाट अपने बालक को लेकर भैरवनाथ की देहरी पर बाल उतरवाने के लिए प्रविष्ट हुआ । इसबात की जानकारी होते ही महाराजश्री ने श्रावकों से कहा कि उसे रोकना चाहिए नहीं तो प्रतिष्ठा विधि में अशातना होगी ।

प्रतिष्ठा महोत्सव से पूर्व राज्य से अनुरोध करके देरासरके आसपास पुलिस की कडक व्यवस्था की गई थी । बिलाडा के फौजदार इत्यादि भी कापरडाजी में उपस्थित थे । अतःजाट लोग सफल नहीं हो सकते थे । बालक के बाल उतरवाने के लिए इन्कार करते समय दंगा होने की संभावना थी । किन्तु सदभाग्य से नही हुआ ।

जाट लोग हिंसक आक्रमण के लिए योजना विचारते और उसकी अफवा फैलती । महाराजश्री के सिर पर मुसीबत मंडराने की

बात फैली थी । किन्तु इस स्थिति में शांति, सूझबूझ और निर्भयता से काम लेने की आवश्यकता थी । महाराजश्री की सूचना के अनुसार श्रावकगण व्यवहार करते थे । भैरवजीकी मूर्ति हटाने का यही उचित अवसर था, ये देखकर रात के समय भैरवजी की मूर्ति हटाकर निकट के उपाश्रय में उसके मूल स्थान पर स्थापित की गई ।

प्रतिष्ठा का महत्वपूर्ण कार्य पूर्ण हुआ । अब दूसरे दिन द्वारोद्घाटन की विधि बाकी थी । प्रतिष्ठा की विधि पूर्ण होते ही बहुत से लोग अपने गांव वापस आए थे, फिरभी अभी सैंकडों लोग कापरडाजी मे रूके हुए थे । उस दिन शाम को समाचार आए कि पास एक गांव के चार सौ शस्त्रधारी जाट मंदिर पर आक्रमण करने वाले हैं और मंदिर का अधिकार लेना चाहते हैं । अचानक इस तरह से आक्रमण हो तो बहुत अधिक खतरा हो सकता है । महाराज श्री ने गढ़ के बाहर जो लोग तंबु में रह रहे थे उन्हें गढ के अंदर आ जाने को कहा । मुनीम पनालालजी को भी परिवार सहित गढ़ के अंदर बुलवा लिया गया । कुछ भक्तों ने महाराजश्री से अनुरोध किया कि जाट लोगों का दल आ पहुंचे उससे पहले हम आपश्री को और रक्षकों को बिलाडा गांव पहुंचा देना चाहते हैं । किन्तु महाराजश्री ने ये प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए कहा 'मेरा जो होना होगा हो मुझे कोई भय नहीं है । कापरडाजी के तीर्थ की रक्षा के लिए मेरे प्राण जाऐंगे तो मुझे भी अफसोस नहीं होगा ।''

शाम को अंधेरा होने आया । इतने में लगभग ४०० हथियारधारी जाट लोग मांदिर पर चिल्लाते हुए आक्रमण के लिए आ

पहुंचे । बहुत अधिक शोरगुल हुआ । किन्तु सभी श्रावक गढ़ के अंदर प्रविशष्ट हो गए थे । और गढ़का द्वार बंद था अतः जाटों ने गढ़ को घेर लिया । बाहर से वे पत्थर मारते और गोली छोड़ रहे थे किन्तु सदभाग्य से गढ़ के अंदर कोई घायल नहीं हुआ ।

अगले दिन जाटों के आक्रमण की अफवा आई कि फौरन महाराजश्री की सूचना के अनुसार मुनीम पन्नालालजी ने रक्षण प्रदान करने के लिए जोधपुर राज्य के महाराजा को प्रार्थना करने के लिए एक काबिल मनुष्य को चुपचाप रवाना कर दिया था । ये समाचार महाराजा को मिलते ही दीवान जालमचंदजी के प्रयास से ऊँटसवारों का सैन्य-दल कापरडाजी के लिए फौरन रवाना कर दी गई । रात के समय जब यह हंगामा हो रहा था तब राज्य का सैन्य आनेकी बात जानकर जाट लोग भागदोड करने लगे । बहुत से लोगों को पकड लिया गया । थोडी देर में तो आक्रमणकारी में से कोई वहां न रहा । स्थानिक जाट लोग भी भयभीत हो गए । तीर्थ में बिल्कुल शांति स्थापित हो गई । गढ़ के द्वार खुल गए और शेष रात्रि शांतिपूर्ण ढंग से सभी ने बिताई । दूसरे दिन सुबह नियत समय में द्वारोद्घाटन की विधि हुई और उपस्थित अंतराय कर्म शांत होने पर हर्षोल्लासपूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्यक्रम पूर्ण हुआ । क्रमशःश्रावक बिखरने लगे और कापरडाजी तीर्थ को राज्य की ओर से रक्षण प्राप्त हुआ ।

थोडे समय के बाद जाट लोगों ने चामुंडा माता और भैरवजी के अधिकार के लिए अदालत में दावा किया था किन्तु वे हार गए थे । कापरडाजी का जिनमंदिर देव देवी सहित जैनों

के अधिकार में हैं और उसमें हस्तक्षेप करनें का किसी को अधिकार नहीं है इसप्रकार का फैसला अदलात ने दिया । तब से कापरडाजी तीर्थ की महिमा पुनः बढ़ने लगी और अनेक यात्री वहाँ निर्विघ्न यात्रा करने आने लगे ।

इस तरह महाराजश्री ने कापरडाजी तीर्थ में प्राणांत कष्ट उठाकर भी पुनरुद्धार करवाया था । महाराजश्री के हाथों यह एक ऐतिहासिक कार्य हुआ ।

कापरडाजी से विहार करके महाराजश्री अहमदाबाद पधारे और वि.सं. १९७५ का चातुर्मास अहमदाबाद में किया । चातुर्मास के बाद वि.सं. १९७६ की पोस वद ११ (एकादशी) के दिन अहमदाबाद से केसरियाजी तीर्थ का ६'री' पालक संघ महाराजश्री की निश्रा में निकाला गया । इस संघ के खर्च की जिम्मेदारी अहमदाबाद के शेठ श्री साराभाई डाह्याभाई ने ली थी । अहमदाबाद मे शेठ हठीभाई की वाडी में इस संघ के संघवी का सम्मान किया गया था । शेठ साराभाई ने संघ के साथ पदयात्रा करने का आग्रह रखा तब महाराजश्री ने उन्हें व्यवहारिक सूचन करते हुए कहा कि 'सम्पूर्ण संघ का आधार आप पर है अतः अतिशय परिश्रम मत कीजिए । जहाँ आवश्यक हो वहां आप वाहन का उपयोग अवश्य करें ।

संघ अहमदाबाद से चांदखेडा, शेरसा, तारंगा, इडर अत्यादि स्थलों पर यात्रा करते हुए चुलेवा नगर में श्री केसरियाजी तीर्थ में पहुँचा वहां उल्लास पूर्वक अट्ठाई महोत्सव हुआ । महाराजश्री संघ के

साथ ही अहमदाबाद वापस आनेवाले थे किन्तु उदयपुर के संघ ने वहां आकर महाराजश्री को प्रार्थना की कि वे उदयपुर पधारे । अतः महाराजश्री को उदयपुर जाना पड़ा संघ धामधूम से अहमदाबाद वापस आया ।

उदयपुर में चातुर्मास : (सं. १९७६)

महाराजश्री केसरियाजी से विहार करते हुए उदयपुर पधारे महाराजश्री के व्याख्यान में अनेक लोग आने लगे । श्रावकों में बहुत उल्लास और जागृति का वातावरण हो गया था इससे संघ ने महाराजश्री को चातुर्मास उदयपुर में ही करने का आग्रह किया । लोगों का उत्साह देखकर महाराजश्री ने इसके लिए संमति प्रकट की । चातुर्मास का स्थान निश्चित होने के बाद महाराजश्री ने आसपास के विस्तारों में विहार किया और चातुर्मास के लिए पुनः उदयपुर आ पहुँचे ।

उस समय ऊंझा की ओर से विहार करके मुनिश्री वल्लभ विजयजी (युगवीर आचार्य वल्लभसूरि) केसरियाजी तीर्थ की यात्रा के लिए ६'री' पालक संघ के साथ निकले थे । उदयपुर के विराम के दौरान महाराजश्री से उनकी प्रथम बार मुलाकात हुई । ये मुलाकात बहुत महत्व की बनी । शासन के उद्धार के लिए कैसे कैसे कार्य करने चाहिए इस संदर्भ में दोनों के बीच विचार-विनिमय हुआ । पू. वल्लभविजयजी ने महाराजश्री को सूचित किया कि जैन साधुओं में शिथिलाचार और मतभेद बढते जा रहे हैं । उन्हें दूर करने के लिए अहमदाबाद मे एक मुनि संमेलन बुलवाने की आवश्यकता है । महाराजश्री ने इस विचार को स्वीकार किया ।

वि.सं. १९७६ में उदयपुर के चातुर्मास के दौरान महाराजश्री ने 'श्रीपन्नावणासूत्र' पर व्याख्यान देना शुरु किया । महाराजश्री के व्याख्यानों का प्रभाव इतना अधिक पडा कि उनकी तेजस्वी प्रतिभा और विद्वता तथा सचोट व्याख्यान शैली की बात फैलते हुए उदयपुर के महाराणा श्री फतेहसिंहजी के पास पहुंची । उन्होंने राजमंत्रीश्री फतेहकरणजी को महाराजश्री के पास भेजा । फतेहकरणजी विद्वान थे और संस्कृत प्राकृत भाषा के अच्छे जानकार थे । वे महाराजश्री के व्याख्यान में प्रतिदिन आकर बैठने लगे । उन्हें महाराजश्री की असाधारण प्रतिभा का परिचय हुआ । उन्होंने महाराणा के समक्ष इतने मुक्त कंठ से महाराजश्रीकी प्रशंसाकी कि महाराणा को महाराजश्री से मिलने की इच्छा हुई । इसके लिए उन्होंने महाराजश्री को महल में पधारने की प्रार्थना की । किन्तु महाराजश्री ने कहलवाया कि कुछ महान पूर्वाचार्य राजमहल में गए के प्रमाण हैं किन्तु वे स्वयं एक सामान्य साधु है और राजमहल में जाने की उनकी इच्छा नहीं है । महाराणा ने महाराजश्री की बात को समझदारी पूर्वक स्वीकार किया । यद्यपि वे स्वयं उपाश्रय में आएँ ऐसी परिस्थिति न थी अतः उन्होंने अपने युवराज को महाराजश्री के पास भेजा । वे प्रतिदिन व्याख्यान में आकर बैठते । महाराणा ने महाराजश्री को कहलवाया कि राज्य के ग्रंथालयों से उन्हें जिस ग्रंथ की आवश्यकता हो वे फौरन प्राप्त करवाएगें । इतना ही नहीं अन्य किसी भी प्रकार की सहायता चाहिए तो उसे भी पूर्ण करेगें ।

उन दिनों बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के स्थापक पंडित मदनमोहन मालविया उदयपुर पधारे थे और राज्य के अतिथि बने थे। उस समय महाराणा ने मालविया जी से निवेदन किया कि महाराजश्री विजयनेमिसूरि एक मिलने लायक विद्वान संत है । इससे मालवियाजी महाराजश्री से मिलने उपाश्रय में पधारे । प्रथम मुलाकात में ही मालवियाजी बहुत प्रभावित हुए थे । उदयपुर में जितने दिन वे रूके उतने दिन प्रतिदिन महाराजश्री से मिलने आते थे और अनेक विषयों पर विचार-विमर्श करते थे । वे महाराजश्री को गुरुजी कह कर संबोधित करते थे ।

तत्पश्चात महाराजश्री अहमदाबाद में थे उस दौरान मालवियाजी जब-जब अहमदाबाद आते वे अवश्य महाराजश्री से मिलने जाते थे । प्रो. आनंदशंकर ध्रुव की बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर के रूप मे नियुक्ति हुई । अत: वे तथा अन्य विद्वान भी मालवियाजी के साथ महाराजश्री से मिलने आते थे । महाराजश्री के अनुरोध से मालवियाजी को हेमचंद्राचार्य कृत 'योगशास्त्र' पढने की इच्छा हुई थी । उस ग्रंथ की एक हस्तप्रत महाराजश्री ने भंडार में से प्राप्तकर मालवियाजी को दे दी ।

उदयपुर का चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराजश्री की निश्रा में उदयपुर से राणकपुर का संघ निकला था । महाराजश्री राणकपुर से विहार करते हुए जावाल पधारे । जावाल से महाराजश्री की निश्रा में सिद्धाचल जी की यात्रा का संघ निकला । जीरावला, आबु, कुंभारिया,

तारंगा, मैत्राणा, चारूप, पाटण, शंखेश्वर इत्यादि तीर्थस्थलों की यात्रा करते हुए संघ अहमदाबाद आ पहुंचा । महाराजश्री अहमदाबाद में रूके । संघश्री दर्शनविजय जी की निश्रा में आगे बढ़ता हुआ पालीताणा की ओर खाना हुआ ।

महाराजश्री ने अहमदाबाद में विराम किया था उस समय महाराजश्री की लाक्षणिक प्रतिभा का परिचय प्राप्त हो ऐसी एक घटना बनी ।

अंग्रेज कलेक्टर के साथ मुलाकात :

उन दिनों अंग्रेज सरकार के विरुद्ध असहकार का राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था । उस समय कांग्रेस का अधिवेशन अंहमदाबाद में होने वाला था । जैन साधुओं की दिनचर्या मोक्षलक्षी, संयमभरी होने के कारण राष्ट्रीय आंदोलन में वे कोई जुडे न थे । अहमदाबाद में गोरे अंग्रेज कलेक्टर ने अनुमान लगाया कि जैन साधु राष्ट्रीय आंदोलन के विरुद्ध हैं और अहमदाबाद में जैनों की बहुत अधिक संख्या है । जैन कोम को सरकारी पक्ष में लेना हो तो उनके धर्मगुरु विजयनेमिसूरि को हाथ में लेना चाहिए । किन्तु अहमदाबाद के कलेक्टर को यह भ्रम था । उनकी धारणा थी कि एक अंग्रेज कलेक्टर निमंत्रण दे तो वे लोग दौडते हुए उन्हें मिलने आएँगे । उन्होंने महाराजश्री को अपने बंगले पर मिलने आने के लिए निमंत्रण भेजा । किन्तु महाराजश्री ने कलेक्टर के बंगले पर जाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और कहलवाया कि कलेक्टर को यदि इच्छा हो तो हमारे पास चाहे

जब आ सकते हैं । कलेक्टर ने लगभग तीन बार महाराजश्री को इस तरह अपने पास बुलाने का प्रयत्न किया किन्तु अंततः निष्फल होकर महाराजश्री के पास आने के लिए तैयार हुए । कलेक्टर ने पूछवाया कि वह कुर्सी पर बैठें तो महाराजश्री को कोई ऐतराज तो नहीं ? महाराजश्री ने कहलवाया कि - जैन जैनेतर कोम के बडे बडे आगेवान एवं विद्वान आते हैं किन्तु वे औपचारिकता की दृष्टि से और जैन साधुओं का विनय संभालने के लिए नीचे ही बैठते हैं । कलेक्टर ने नीचे बैठना स्वीकार किया । वे जब मिलने आए तब सिर पर से हेट तो उतारी किन्तु पांव के जूते उन्हें निकालने की इच्छा न थी । महाराजश्री ने उनके समक्ष ऐसा बुद्धिगम्य तर्क प्रस्तुत किया कि फौरन कलेक्टर ने पांव के जूते निकालना स्वीकार कर लिया । जूते निकालकर वे महाराजश्री के पास आए और सामने नीचे बैठ गए

कलेक्टर ने महाराजश्री से राष्ट्रीय आंदोलन की चर्चा की किन्तु महाराजश्री ने स्पष्ट शब्दों में समझा दिया कि जैन साधु किसी के विवाद में नहीं पड़ते । महाराजश्री के साथ कलेक्टर ने तत्कालीन परिस्थिति के संदर्भ में कई विषयों की स्पष्टता की और महाराजश्री के तार्किक उत्तरों से वे बहुत प्रभावित हुए । महाराजश्री ने उनके समक्ष जैन तीर्थों के रक्षण की सरकार की जिम्मेदारी है, इस बात पर जोर दिया । क्योंकि जैनों की ओर से सरकार को कर के रूप में बहुत बडी रकम मिलती है । कलेक्टर ने इस बात का स्वीकार

किया और तीर्थरक्षा के विषय में स्वयं अधिक ध्यान देगें ऐसा विश्वास दिलाया ।

इस तरह कलेक्टर साहब महाराजश्री से अपना काम करवाने के लिए मिलने आए थे किन्तु बिदा हुए महाराजश्री ने सूचित किए कार्य करने का वचन देकर । इस अंग्रेज अधिकारी ने अपनी निजी डायरी में लिखा कि महाराजश्री बहुत तेजस्वी और शक्ति संपन्न (Full of Energy) महापुरुष है ।

तीर्थोद्धार महाराजश्री के जीवन का एक महत्वपूर्ण कार्य था । इस समय के दौरान उन्होंने तलाजा और शेरीसा तीर्थ के जीर्णोद्धार की प्रेरणा दी । एकबार महाराजश्री स्वयं प्रस्ताव रखते तो लाभ लेने वाले श्रेष्ठियों के बीच स्पर्धा होती । महाराजश्री की वचनसिद्धि ऐसी थी कि वे कहें वैसा कार्य अवश्य होता था ।

अहमदाबाद की स्थिरता के दौरान प्रो. आनंदशंकर ध्रुव कवि नानालाल इत्यादि साक्षर महाराजश्री से मिलने आते थे । महाराजश्री की विद्वत् प्रतिभा से वे बहुत प्रभावित हुए थे ।

सिद्धाचल की यात्रा के मुंडकाकर के सामने असहकार:

महाराजश्री अहमदाबाद से विहार कर भोंयणी, गांभु, चाणस्मा, इत्यादि स्थलों पर विचरण करते हुए पाटण पधारे ।

पाटण में उन्होंने चातुर्मास निश्चित किया था । इस चातुर्मास के दौरान एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना बनी । अतीत में वि.सं. १९४२ में पालीताणा के ठाकुर और आनंदजी कल्याणजी की पेढी

के बीच तीर्थ के रक्षण के लिए करार हुआ था । तद्नुसार प्रतिवर्ष पन्द्रह हजार रूपये पेढी को पालीताणा के ठाकुर को देना पड़ता था । अंग्रेज पोलिटिकल एजन्ट कर्नल वोट्स ने इस संदर्भ में मध्यस्थी करके पालीताणा के ठाकुर को बड़ी रकम दिलवा दी थी । व्यक्तिगत यात्री को कर न भरना पडे और तकलीफ न हो इसलिए पेढ़ी ने यह जिम्मेदारी स्वीकार की थी । यह करार चालीस वर्ष के लिए किया गया था । करार की अवधि पूर्ण होने पर तीर्थरक्षा की रकम के बारे में दोनों पक्ष पुनःमंत्रणा करके नवीन निर्णय ले सके ऐसी कलम थी । इस करार की अवधि वि.सं.१९८२में पूर्ण होती थी । अपने राज्य में तीर्थ स्थल हो तो उस राज्य के राजवी को उसमें से अच्छी कमाई करने का लोभ हो ऐसा वह समय था । पालीताणा के ठाकुर ने घोषणा की कि ता. ३१ मार्च १९२६ के दिन करार पूर्ण हुए है अतः १ ली अप्रैल १९२६ के दिन से राज्य की ओर से 'मुंडकावेरा' लिया जायगा । प्रत्येक यात्री स्वयं यह कर भरने के बाद यात्रा कर सकता है । मुंडकावेरा से राज्य को अधिक आमदनी तो होगी किन्तु इससे यात्रिकों की परेशानी बढ़ जाएगी । ठाकुर निर्धारित राशि पेढी से लेने की अपेक्षा 'मुंडकावेरा' वसुल करने की इच्छा रखता था क्योंकि आवक अधिक होने की संभावना थी । ऐसे अन्यायी 'मुंडकावेरा' का विरोध करना ही चाहिए, ऐसा महाराजश्री को लगा उन दिनों महाराजश्री के वचन पालने के लिए सभी संघ तत्पर थे । राष्ट्रीय स्तर पर असहयोग आंदोलन चल रहा था । महाराजश्री

को तीर्थयात्रा के संदर्भ में असहकार विचार स्फूरित हुआ । अन्य कोई मार्ग न सूझने पर महाराजश्री ने घोषित किया कि जब तक यह अन्यायी कानून दूर न हो तब तक किसी को सिद्धाचल की यात्रा नहीं करनी है । जिस किसी को सिद्धाचलजी क्षेत्र स्पर्शना की भावना हो वे कदम्बगिरि, रोहिसाला इत्यादि तीर्थों की यात्रा करें कि जो तीर्थ शेत्रुंजय पर्वत के भाग स्वरूप है और पालीताणा के राज्य की सीमा के बाहर है । ता १ अप्रैल १९२६ के दिन 'मुंडकावेरा' एकत्रित करने के लिए ठाकुर ने कार्यालय खोले और टेकरी (पहाडी) के शिखर तक जगह जगह चोकीदार बैठा दिए थे । किन्तू शिहोर के स्टेशन से जैन स्वयंसेवक यात्रिकों को इस असहकार के संदर्भ में सहकार देने के लिए समझा रहे थे । परिणामस्वरूप एक भी यात्रिक पालीताणा मे होकर गिरिराज पर न चढा था । गांव और पहाडी सुनसान हो गए । पालीताणा में से तमाम साधु-साध्वी भी विहार करके राज्य के बाहर निकल गए थे । इसतरह यात्रिकों को असहकार से राज्य को पेढ़ी द्वारा जो वार्षिक पन्द्रह हजार रुपये की आवक होती थी वह भी बंद हो गई । देखते देखते एक वर्ष बीत गया किन्तु दोनों पक्ष में से कोई न झुका । महाराजश्री का वर्चस्व जैन समाज पर कितना था इस घटना से देखा जा सकता है । दूसरा वर्ष भी इसी तरह पूर्ण हो गया । अब ठाकुर कमजोर पड़े । उन्होंने देखा कि जैन समाज किसी भी तरह से झुकता नहीं है । इतना ही नहीं उन्होंने यह भी जाना कि जैन संघ यह केस

ब्रिटन तक ले जाकर प्री.वी. काउन्सिल में लड़ना चाहतां है । इस बात की जानकारी होते ही वाइसरोय को भी ऐसा लगा कि यदि यह समस्या प्री.वी. काउन्सिल में जाय तो उससे उनकी प्रतिष्ठा को आँच आएगी । अत: इससे अच्छा है कोई समाधान हो जाय । पालीताणा के ठाकुर अंतत: इस बात पर झुके कि वे मुंडकावेरा के स्थान पर निर्धारित रकम लेने के लिए तैयार है । इसके लिए सीमला में वाइसरोय ने पालीताणा के ठाकुर और पीढ़ी के आगेवानों की एक बैठक बुलवायी । मंत्रणा के अंत में ऐसा करार किया कि पैंतीस वर्ष तक पीढ़ी प्रतिवर्ष साठ हजार पालीताणा के ठाकुर को धर्मरक्षा के लिए दें । यह रकम बहुत अधिक थी। किन्तु ऐसा किए बिना मुक्ति न थी । अत: दो वर्ष के अंत में शत्रुंजय की यात्रा यात्रिकों के लिए किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत संत्रास के बिना प्रारंभ हुई । (देश को स्वतंत्रता मिली और देशी राज्यों का विलनीकरण हुआ तब यह कर सौराष्ट्र सरकार ने खत्म किया था)

वि.सं. १९८२ का चातुर्मास पाटण में कर महाराजश्री अहमदाबाद पधारे । पाटण के शेठ नगीनदास करमचंद की भावना के अनुसार महाराजश्री की निश्रा में अहमदाबाद से कच्छ भद्रेश्वर यात्रा का संघ निकला । गांव-गांव में भव्य स्वागत होता । महाराजश्री धांगध्रा तक तथा संघ ने आगे प्रयाण किया । अहमदाबाद में नंदनविजयजी महाराज को आचार्य की पदवी प्रदान की गई ।

वि.सं. १८८३ का चातुर्मास महाराजश्री ने अहमदाबाद में पांजरापोल के उपाश्रय में किया । यह चातुर्मास चिरस्मरणीय रहा क्योंकि इस वर्ष अहमदाबाद में बरसात में इतनी बारिश हुई कि जैसे जल प्रलय न हो ! अतिवृष्टि जैसी स्थिति हो गई । महाराजश्री की अनुकंपादृष्टि भी इतनी ही सतेज थी । उन्होंने राहतकार्यों के लिए अहमदाबाद में श्रेष्ठियो से अनुरोध किया और देखते-देखते साढ़े तीन लाख रुपये का फंड एकत्रित हो गया । अनेक स्वयंसेवक तैयार हुए और संकटग्रस्त लोगों को अनाज कपडे तथा जीवनोपयोगी सामग्री बांटी गई । अनेक लोगों के दुःख कम हुए । लोक सेवा का एक महत्वपूर्ण कार्य हुआ ।

भोजनशाला, पांजरापोल की स्थापना :

महाराजश्री का प्रभाव ऐसा था कि प्रत्येक कार्य के लिए निर्धारित से अधिक धन आ जाता था । इस राहत कार्य के लिए बहुत धन आया और राहत कार्य पूर्ण होने पर बड़ी रकम बची । समयज्ञ महाराजश्री ने श्रेष्ठियों के समक्ष एक अन्य विचार रखा । अहमदाबाद जैसे बड़े शहेरों में अकेले नोकरी करते श्रावको के लिए तथा प्रतिदिन बाहरगांव से काम प्रसंग में आनेवाले श्रावकों के लिए भोजन की व्यवस्था नहीं हैं । इसके लिए एक जैन भोजनशाला आवश्यक है । महाराजश्री के विचार फौरन कार्यान्वित हुआ और पांजरापोल में ही जैन-भोजनशाला स्थापित की गई ।

चातुर्मास पूर्ण होते ही महाराजश्री ढाल की पोल के जीर्णोद्धार हुए देरासर में प्रतिष्ठा करवा कर मातर पधारे । वहां भी उनकी प्रेरणा से जीर्णोद्धार हुए, ५१ देवकुलिका वाले सुमतिनाथ भगवान के देरासर में प्रतिष्ठाविधि अट्ठाई महोत्सवपूर्वक हुई । वहां से महाराजश्री खंभात पधारे और वहां भी उनकी प्रेरणा से जीर्णोद्धार हुए स्थंभन पार्श्वनाथ भगवान के प्राचीन देरासर में अंजनशलाका प्रतिष्ठा महोत्सव धामधूमपूर्वक हुआ । इस प्रसंग से लोगों में धर्मभावना की बहुत वृद्धि हुई और संघ के अतिशय आग्रह के कारण महाराजश्री ने वि.सं. १९८४ का चातुर्मास खंभात में करना स्वीकार किया ।

इसी समयकाल में समेतशिखर के तीर्थ के अधिकार का विवाद भी उपस्थित हुआ । इससे पूर्व सम्पूर्ण पहाड शेठ आणंदजी कल्याणजी की पेढ़ी ने पालगंज के राजा से खरीद लिया था । इस पहाड पर पूजा इत्यादि के अधिकार के संदर्भ में विवाद हुआ । यह विवाद हजारीबाग की कोर्ट में और तत्पश्चात पटना की हाईकोर्ट में गया । महाराजश्रीके मार्गदर्शन के अंतर्गत भुलाभाई देसाई, छोटालाल त्रिकमलाल, केशवलाल, आमथालाल इत्यादि ने कोर्ट में अपनी बात प्रस्तुत करने पर पेढ़ी के पक्ष में निर्णय आया था ।

कदम्बगिरि का तार्थोद्धार :

वि.सं.१९८५ का चातुर्मास महुवा में निश्चित हुआ था । महाराजश्री विहार करते करते कदम्बगिरि आ पहुंचे । इस तीर्थ के उद्धार के लिए महाराजश्री की तीव्र इच्छा थी । जिनमंदिर के लिए

जमीन खरीदने के लिए पैसा देनेवाले श्रेष्ठी तो बहुत थे किन्तु गरासियों की अविभाज्य जमीन पाने का कार्य बहुत कठिन था । ऐसा कठिन कार्य भी बाहोश व्यक्तियों ने बुद्धि लडाकर पूर्ण किया और गरासिया भी प्रसन्न हुए । उचित मुहूर्त में खनन विधि, शिलारोपण इत्यादि हुआ और जिनमंदिर के निर्माण का कार्य आगे बढने लगा । इस दौरान महाराजश्री ने महुवा के चातुर्मास के दौरान वहां श्री यशोवृद्धि जैन बालाश्रम की स्थापना के कार्यों को भी वेग दिया ।

वि.सं. १९८७ का वर्ष ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत महत्व का था । तिर्थाधिराज सिद्धगिरि पर अंतिम जीर्णोद्धार हुए और आदिश्वर भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुए ४०० वर्ष पूर्ण होने पर यह ४०० वीं वर्षगांठ धामधूमपूर्वक मनाने के लिए अहमदाबाद के श्रेष्ठियों में चर्चा चल रही थी । अहमदाबाद के बहुत से मिलमालिक जैन थे और उत्सव के दिन मीलें बंद रखने का उन्होंने निर्णय लिया था । परन्तु उन दिनों सत्याग्रह का आंदोलन चल रहा था और गांधीजी सहित कुछ सत्याग्रही केद में थे । ये देखते हुए नवकारशी का भोजन समारंभ करने के बारे में दो भिन्न-भिन्न मत प्रवर्तमान थे । परन्तु महाराजश्री की सूझबूझ से मध्यस्थी करने पर विवाद टल गया था और नवकारशी अच्छी तरह हुई । उस दिन नगरशेठ के बंडे में भव्य स्नात्र-महोत्सव मनाया गया था । जिसमें हजारों की संख्या में लोग उपस्थित रहे थे और विशाल रथयात्रा निकली थी। इसमें साधु साध्वीयों और श्रावक श्राविकाओं का विशाल समुदाय जुड़ा था ।

इस शत्रुंजय तीर्थ की ४०० वीं वर्षगांठ अहमदाबाद में अद्वितीय ढंग से मनाई गई ।

बोटाद का चातुर्मासः (सं. १९८८) कोमल हृदय की गवाहीः

महाराज श्री का वि.सं. १९८८ का चातुर्मास अहमदाबाद में निश्चित हुआ था । किन्तु बोटाद से संदेशा आया कि श्री विजयनंदनसूरि के वयोवृद्धसंसारी पिताश्री हिमचंदभाई बिस्तरग्रस्त है और उनकी आंतरिक भावना है कि महाराज श्री चातुर्मास बोटाद में करके उन्हें लाभ दें । संदेशा मिलते ही उसकी गंभीरता को और योग्य पात्र की अंतिम इच्छा का ध्यान महाराजश्री को होगया । उन्होंने दिनों की गिनती करके देखी । भीषण गरमी के दिन थे । चातुर्मास प्रवेश में तेरह दिन की देर है । सुबह शाम उग्र विहार किया जाय तो ही अहमदाबाद से बोटाद पहुँचा जा सकता है । महाराजश्री ने तत्काल निर्णय ले लिया । अहमदाबाद के श्रेष्ठियों को निर्णय बता दिया और अपने विशाल साधु संप्रदाय को आज्ञा दे दी कि शाम को बोटाद की ओर विहार करना है तीन घंटे में समग्र समुदाय तैयार हो गया । ये देखकर वंदन के लिए आए श्रावक श्राविका आश्चर्य चकित रह गए । महाराज श्री अपने समुदाय के साथ विहार करते करते निश्चित दिन बोटाद आ पहुंचे । हिमचंदभाई बहुत प्रसन्न हुए । चातुर्मास प्रारंभ हुआ । महाराजश्रीने विस्तरग्रस्त हिमचंदभाई के पास नियमित जाकर उन्हें अंतिम आराधना बहुत अच्छी तरह करवाई कुछ ही दिनों में

हिमचंदभाई ने देह त्याग दिया । बोटाद पहुंचने का उन्होंने योग्य समय पर शीघ्र निर्णय लिया इसका महाराजश्रीको संतोष हुआ ।

कदम्बगिरि का प्रतिष्ठा महोत्सव :

वि.सं. १८८९ में महाराजश्री कदम्बगिरि पधारे । यहाँ तैयार हुए नूतन जिनालय में अंजनशलाका और प्रतिष्ठा महोत्सव था । भावनगर राज्य की ओर से तंबु, पानी, इत्यादि की व्यवस्था करदी गई थी । उसके लिए भावनगर के सर प्रभाशंकर पटणी ने स्वयं देखभाल की थी । कार्यक्रम के अगले दिन शाम के समय भयंकर आंधी आई। किन्तु मंडप को कोई नुकशान नहीं हुआ । क्योंकि सावधानी के कदम उठाए गए थे । एक हजार के करीब प्रतिमाजी अंजनशलाका के लिए आई थी । हजारों लोग इस मंगल उत्सव में हिस्सा लेने के लिए आ पहुंचे थे । यह प्रतिष्ठा अच्छी तरह संपन्न होने के बाद महाराज श्री ने चातुर्मास भावनगर में किया ।

अहमदाबाद में मुनि संमेलन : ऐतिहासिक घटना :

भावनगर के चातुर्मास के बाद विहार करते करते महाराजश्री अहमदाबाद पधारे । वि.सं. १९९० में अहमदाबाद में मुनि संमेलन आयोजित करने का उन्होंने निश्चय किया । चातुर्मास के बाद गुजरात राजस्थान में से सर्व साधु साध्वी विहार करते हुए अहमदाबाद पहुँच सके इस दृष्टि से फागुन सुद तृतीया के संमेलन का आयोजन हुआ। उन दिनों में साधुओं में शिथिलाचार बढ़ता जा रहा था । देवद्रव्य, दीक्षा पदवी, तिथि चर्चा, तीर्थरक्षा, साधु संस्था में प्रविशिष्ट हुई भिंदाकुथली

तथा आचार की शिथिलता इन सभी के बारे में चर्चा की आवश्यकता थी । पदवी की दृष्टि से महाराजश्री विजयनेमिसूरि सबसे बडे थे अतः उनकी निश्रा में आयोजित इस मुनि संमेलन में ४५० आचार्यादि साधु महाराजों, ७०० साध्वीजी उपस्थित रहे थे । ३४ दिन चले इस सम्मेलन में प्रत्येक विषय की गहराई से और व्यवस्थित ढंग से विचारना हुई थी । उस समय के बडे बडे आचार्य जैसे कि श्री विजयदानसूरि, श्री विजयलब्धिसूरि, श्री सिद्धिसूरि, श्री विजयप्रेमसूरि, श्री विजयनीतिसूरि, श्री सागरानंदसूरि, श्री विजयउदयसूरि, श्री विजयनंदनसूरि, श्री विजयवल्लभसूरि, पं. श्री रामविजयजी, श्री पुण्यविजयजी, श्री विद्याविजयजी इत्यादि ने इस संमेलन में भाग लिया था । सम्पूर्ण कार्यवाही अत्यंत व्यवस्थित और जिनशासन के अनुसार थी । संमेलन में प्रस्ताव का पट्टक सभी को पढकर सुनाया गया और उसे प्रत्येक को आचरण में लाना था ।

इस सम्मेलन की सफलता में नगरशेठा तथा अन्य श्रेष्ठियों ने तन, मन, और धन से अच्छा योगदान दिया था । महाराजश्री विजयनेमिसूरि की निश्रा में इतने सारे साधु एकत्रित हुए और इतने सारे दिन साथ में मिलकर विचार विमर्श किया वही सूचित करता है कि महाराजश्री का स्थान चतुर्विध संघ में कितना महान और आदरपूर्ण था।

वि.सं. १९९०में महाराजश्री ने जावाल में जिनमंदिर में प्रतिष्ठा करवाई और तत्पश्चात् चातुर्मास भी वहीं किया । चातुर्मास के बाद महाराजश्री अहमदाबाद पधारे ।

महाराजश्री की एक महत्व की प्रिय प्रवृति ६'री' पालक तीर्थयात्रा संघ निकालने की थी । उन दिनों में तीर्थयात्रा में अकेले-दुकेले जाना सरल न था । बहुत से स्थानों पर रेल्वे नहीं थी । चोर लूटेरों का भय रहता था । खाने, पीने और रात्रि विश्राम व्यवस्था की चिंता रहती थी । संघ निकले तो सभी को लाभ मिलता है । साधारण स्थिति के लोग सरलता से जुड सकते थे । गांव-गांव में धर्म जागृति और धर्मभावना के काम होते थे ।

माकुभाई शेठ का गिरनार-सिद्धाचल की यात्रा संघ : ऐतिहासिक घटना :

महाराजश्री जब अहमदाबाद पधारे उससे पहले जावल जाकर माणेकलाल मनसुखभाई (माकुभाई शेठ)ने गिरनार और सिद्धाचल का भव्य यात्रा संघ निकालने की अपनी भावना प्रकट की । उनके प्रस्ताव का महाराजश्री ने स्वीकार किया और महाराजश्री अहमदाबाद पधारे तो उसके लिए जोरशोर से तैयारी होने लगी ।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजश्री की निश्रा में वि.सं. १९९१ में निकले इस यात्रासंघ जैसा यात्रासंघ अभी तक निकला न था । अहमदाबाद से गिरनार की यात्रा करने के पश्चात् सिद्धाचलजी की यात्रा करनेवाले लगभग डेढ़ महिना चले इस संघ में १३ हजार से अधिक ६'री' पालक यात्रिक थे । २७५ मुनि भगवंत, ४०० से भी अधिक साध्वीजी महाराज, ८५० बैलगाडी, १३०० जितनी मोटर, बस, ट्रक इत्यादि अन्य वाहन उनमें थे । व्यवस्थापक गण, अन्य

श्रावक नोकर चाकर मिलकर बीस हजार आदमिया का काफिला एक स्थान से दूसरे स्थान डेरा डालते हुए आगे बढते थे । जिस राज्य में से संघ गुजरता था उस-राज्य के राजा सामने से स्वागत करने आते थे । गोंडल राज्य में कोई भी धर्म के यात्रा संघ पर कर था । अतः संघ ने गोंडल का समावेश नहीं किया था । परन्तु राज्य ने यात्रा कर माफ करके संघ को गोंडल पधारने का विशेष अनुरोध किया । राज्य की इच्छा को मान देकर संघ ने गोंडल गांव में डेरा डाला । इस संघ में विविध प्रकार की बडी बडी (उछामणी) रकम बोली गई थी । जिसमें बड़े बड़े श्रेष्ठीयों ने उसका अच्छा लाभ लिया था । उन दिनो संघपति का इस संघ के कारण आठ लाख रुपये का खर्च हुआ था । इसी से कल्पना की जा सकती है कि यह संघ कितना यादगार रहा होगा ।

महाराजश्री कदंबगिरि से महुवा पधारे उस समय अहमदाबाद के एक दंपति ने महाराज श्री से दीक्षा लेने का प्रस्ताव रखा था । इसीलिए महाराज महुवा से विहार कर अहमदाबाद पधारे और दीक्षा प्रदान की गई । महाराजश्री के ये शिष्य ही रत्नप्रभविजय । संसारी अवस्था में वे डॉक्टर थे । उनका नाम त्रिकमलाल अमथालाल शाह था । उनके बडेभाई ने महाराजश्री से दीक्षा ली थी और उनका नाम मुनि सुभद्रविजय रखा गया । मुनि सुभद्रविजयजी का छोटी उम्र में ही काल धर्म हो गया । इससे डॉक्टर के हृदय में वैराग्य प्रगट हुआ अपनी अच्छी कमाई छोडकर उन्होंने और उनकी पत्नी ने महाराजश्री

से दीक्षा ली । मुनि रत्नप्रभाविजयजी अंग्रेजी भाषा पर अच्छा प्रभुत्व रखते थे । इसीलिए महाराजश्री की प्रेरणा से उन्होंने भगवान महावीर के जीवन के विषय में आठ बडे बडे ग्रंथ अंग्रेजी में प्रकट किए थे ।

जामनगर के शेठ पोपटलाल धारशी ने जब से अहमदाबाद के शेठ माकुभाई का यात्रासंघ देखा तब से उनकी संघ निकालने की भावना थी । उन्होंने उसके लिए सागरजी महाराज से प्रार्थना की । सागरजी महाराज ने कहा था कि आपको यात्रासंघ की शोभा बढ़ानी हो तो श्री विजयनेमिसूरिजी से प्रार्थना करनी चाहिए । इसीलिए शेठ पोपटलाल अहमदाबाद आकर महाराजश्री से आग्रहपूर्वक प्रार्थना कर गए थे । अतः महाराजश्री ने वि.सं. १९९६ का चातुर्मास जामनगर में किया और चातुर्मास पूर्ण होने पर सिद्धाचलजी का ६'री' पालक संघ निकाला गया ।

महाराजश्री ने तत्पश्चात् पालीताणा, भावनगर, वला इत्यादि स्थलों पर चातुर्मास किया । उन्होंने जहाँ-जहाँ विचरण किया वहाँ-वहाँ तीर्थोद्धार, संघयात्रा, प्रतिष्ठा महोत्सव, दीक्षा पदवी महोत्सव इत्यादि प्रकार के कार्य होते रहे । महाराजश्री के पास प्रतिदिन अनेक आदमी वंदना करने और संघ के कार्यों के लिए आते थे ।

खंभात से महाराजश्री अहमदाबाद पधारे थे । वहां जैन मर्चन्ट सोसायटी में देरासर की प्रतिष्ठा करवाई । उसके बाद शेरीसा तथा वामज में प्रतिष्ठा करवाई । वि.सं. २००३ का चातुर्मास साबरमती

और २००४ का चातुर्मास बढवाण में महाराजश्री ने किया अब उनका स्वास्थ्य बिगडता जा रहा था । बारबार चक्कर आ जाते थे । पहले की तरह विहार अब नही हो पाता था । वढ़वाण में तथा बोटाद में प्रतिष्ठा करवाकर महाराजश्री ने कंदबगिरि की ओर विहार किया था ।

महाराजश्री रोहिशाला से विहार करके कदम्बगिरि पधारे । उनकी तबियत अब दिन प्रति दिन क्षीण होती जा रही थी । एक दिन शाम को महाराजश्री के मन में ऐसा भाव जागा कि "इस साल का चातुर्मास कदम्बगिरि में करें तो कितना अच्छा ।" इस तीर्थ का उद्धार उनके हाथों हुआ था अतः तीर्थभूमि के प्रति आत्मीयता पैदा हो गई थी । कादम्बगिरि में चातुर्मास करने के विचार को उनके मुख्य शिष्य श्री उदयसूरि और श्री नंदसूरि ने स्वागत किया । चातुर्मास निश्चित होने पर ये समाचार पालीताणा, भावनगर, महुवा, जेसर, तलाजा, अहमदाबाद इत्यादि स्थलों पर पहुंच गए । महाराज श्री की निश्रा में चातुर्मास करने के लिए कितने ही व्रतधारी श्रावकों ने कदम्बगिरि जाने का निर्णय लिया ।

महुवा में अंतिम चातुर्मास : स्वर्गारोहण :

इस निर्णय की घोषणा होते ही महुवा के अग्रणी श्रावकों को एक नवीन विचार स्फूरित हुआ । उन्हें ऐसा लगा कि अपने वतन के महान पुत्र ने बहुत वर्षों से महुवा में चातुर्मास नही किया है तो इसके लिए अनुरोध करना चाहिए । इसलिए महुवा संघ के

आगेवान महाराजश्री के पास कदम्बगिरि पहुँचे और चातुर्मास महुवा में ही करने के लिए हठपूर्वक आग्रह किया । बल्कि उन्होंने महाराजश्री को बताया कि आपकी प्रेरणा से महुवा में दो नूतन जिन मंदिर हुए हैं उनका काम पूर्ण होने को है अतः उसमें प्रतिष्ठा भी आपके हाथों ही करवाने की भावना है ।

महुवा संघ की प्रार्थना इतनी अधिक थी कि महाराजश्री अस्वीकार न कर सके किन्तु महाराजश्री ने कहा: 'मैं महुवा आ तो रहा हूं । किन्तु प्रतिष्ठा मेरे हाथों नही होनेवाली है ।' महाराजश्री के इस वचन में जैसे कोई गूढ भविष्य का संकेत था ।

उसके पश्चात् महाराजश्री ने चैत्रमास के कृष्णपक्ष में कदम्बगिरि से डेली में विहार किया और लगभग पन्द्रह दिन में वे महुआ पधारे । महुवा के नगरजनों ने जैन अजैन सर्वलोगो ने भावोल्लासपूर्वक उनकी अगवानी की । महुवा बंदर होने के कारण बैसाख महिने की गरमी महारजश्री को कष्टकर न हुई ।

शरीर की अशक्ति और अस्वस्थता के कारण व्याख्यान की जिम्मेदारी महारजश्री के तीन मुख्य शिष्यश्री उदयसूरि, श्रीनंदनसूरि, और श्रीअमृतसूरि ने स्वीकार कर ली । पर्युषण पर्व की आराधाना भी अच्छी तरह चलने लगी । पर्युषण के चौथे दिन दोपहर को आकाश में सूर्य के आसपास धुंधले (मटमैले) रंग का जैसे गोलाकार तैयार होगया हो ऐसा लगा । यह एक अशुभ संकेत था । एक किंवदन्ति है कि आकाश में कुंडलाकार मलक में हाहाकार । संवत्सरी

का दिन अच्छी तरह बीत गया किन्तु शामको गांव के बाहर दालान में बैठकर संघ के श्रावकगण संवत्सरी का प्रतिक्रमण कर रहे थे । उस समय बरगद की एक डाली भयानक आवाज के साथ टूटी । नसीब से किसी को चोट नही आई । किन्तु यह अशुभ संकेत था ।

पर्युषण पर्व पूर्ण हुआ । अब प्रतिष्ठा की तैयारी प्रारंभ हो गई । उस संदर्भ में चर्चा विचारणा करने के लिए अहमदाबाद के कुछ श्रेष्ठीवर्य महाराजश्री से मिलने आ गए । भादों वद अमावस्या की रात आकाश से एक बड़ा तारा तूटा और धडाके का आवाज हुआ । ये भी एक अशुभ संकेत था । जैसे किसी महापुरुष का वियोग होनेवाला न हो ! उसी रात बाजार में पान सुपारी की दुकान के दुकानदार भाई को ऐसा स्वप्न आया कि पूज्य नेमिसूरि दादा की स्मशानयात्रा बेन्डबाजे के साथ निकली है और हजारों आदमी उसमें जुड गए हैं । ये सब जैसे जैसे दुकान के पास से गुजरते हैं वह उनको चाय पिलाते थे ।

आश्विन (आसो) महीने की ओली के दिन निर्विघ्न बीत गए । तत्पश्चात महाराजश्री मलोत्सर्ग करके वापस आ रहे थे तब उन्हें सहारा देने के लिए श्री उदयसूरि और श्री नंदनसूरि साथ में थे फिर भी अचानक समतुला खो देने से महाराजश्री गिर पडे । उनके पेर में बैठीचोट लगी । उसका उपचार प्रारंभ हुआ । इतने में महाराजश्री को सर्दी और खांसी हुई । इतना ही नही ज्वर भी आने लगा । कभी कभी पल्टी (उल्टी) भी होने लगी । महाराजश्री

की अस्वस्थता बढती जारही थी किन्तु मन से वे स्वस्थ शांत और प्रसन्न थे । श्री नंदनसूरि ने जब कहा कि परसो दिवाली है और फिर नव वर्ष जब आपकी वर्षगांठ आती है । तब महाराजश्री ने कहा 'मुझे अब कहां दिवाली देखनी है ?' उनका अंतिमकाल जैसे आ पहुंचा हो इस तरह महाराजश्री ने श्री नंदनसूरि को प्रतिष्ठा के संदर्भ में तथा अन्य कुछ कार्यों के बारे में सूचना दी ।

महाराजश्री का ज्वर उतरता न था उनका हृदय कमजोर होता जा रहा था । इसके लिए डॉकटरों ने इन्जेक्शन देनेकी बातकी । किन्तु महाराजश्री ने इंजेक्शन लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया । जिन्दगी में उन्होंने कभी इन्जेक्शन नहीं लिया था । महाराजश्री की बात डॉकटर ने स्वीकार करली अत: महाराजश्री ने नंदनसूरि से कहा 'डॉक्टर कितने भले है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने का आग्रह नही रखते ।'

दिवाली का दिन आया । महाराजश्री ने अपने शिष्यों से कह दिया कि इस दिन वे पानी के अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रयोग नहीं करना चाहते हैं । महाराजश्री की हालत गंभीर होती जा रही है यह समाचार सुनकर उनके दर्शन के लिए नगर के जैन-जैनेतर लोग उमड़ने लगे । डॉ. भी आ पहुंचे । हृदय की बीमारी के कारण इंजेक्शन देने की आवश्यकता डॉ. को लगी । किन्तु नंदनसूरिजी ने महाराजश्री की भावना डॉकटरों को बता दी और इंजेक्शन न देना ऐसा निर्णय लिया शामका प्रतिक्रमण श्री नंदनसूरि तथा श्री धुरंधर

विजयजी ने महाराजश्री को अच्छी तरह करवाया । संथारा पोरिसी की क्रियाभी अच्छी तरह हुई । संसारके सर्वजीवों के साथ क्षमापना भी हो गई ।

महाराजश्री की ऐसी अंतिम समयकी गंभीर बीमारी को लक्ष्य में रखकर वहां साधु साध्वी श्रावक श्राविका विशाल समुदाय में उपस्थित हो गए और सभी ने महाराजश्री के स्वास्थ के लिए नवकारमंत्र की धुन मचायी । शाम सात बजे महाराजश्री ने शांतिपूर्वक, समाधिपूर्वक देहत्याग किया । महाराजश्री ने अपने ७७ वें वर्ष में जैसे अंतिम दिन पूर्ण किया ।

महाराजश्री के कालधर्म के समाचार देखते देखते चारों ओर फैल गए । तदुपरांत उस रात अलग अलग नगरों के संघों को तार किया गया । चार सौं के करीब तार उस रात गए तीन सौं तार दूसरे दिन हुए । समाचार प्राप्त होते ही महाराजश्री के हजारों भक्त महुवा आ पहुंचे ।

वि.सं. २००६ की कार्तिक सुद प्रतिपदा के दिन शनिवार के नूतनवर्ष के प्रभात में महाराजश्री के देह को डोली में बिराजमान किया गया । बेन्डबाजे के साथ भव्य पालकी अंतिमयात्रा निकाली । गांव के बहर निश्चित किए प्रमार्जित किए स्थल पर महाराजश्री के देह का अग्निसंस्कार किया गया । देह सम्पूर्ण जलते बहुत देर लगी । जिस समय चिता सम्पूर्ण जल रही थी वह महाराजश्री के जन्म समय बीस घडी और पन्द्रह पल का था जैसे उसमें भी कोई संकेत रहा हो ।

महाराजश्री का जन्म महुवा में और उनका कालधर्म भी महुवा में हुआ । उनके देह का अवतरण कार्तिकसुद प्रतिपदा शनिवार दिन में बीस घडी और पन्द्रह पल में हुआ था । उनके देह का विसर्जन भी कार्तिक सुद प्रतिपदा (एकम्) शनिवार के दिन बीस घडी और पन्द्रह पल के समय हुआ । ऐसा योगानुयोग किसी विरल व्यक्ति के जीवन में देखने को मिलता है ।

इस तरह महाराज श्री विजयनेमिसूरिश्वरजी का जीवन अनेक घटनाओं से पूर्ण है । एक व्यक्ति अपने जीवन काल के दौरान स्वयं अकिंचन रहकर कड़क संयमपालन करते हुए अनेक को प्रतिबोध देकर शासनोन्नति का कैसा और कितना भगीरथ कार्य कर सकता है वह महाराजश्री के प्रेरक पवित्र जीवन पर से देखा जा सकता है ।

उस भव्यात्मा का स्मरण भी हमारे लिए उपकारी बनता है । उन्हें कोटि कोटि प्रणाम !

परिशिष्ट–१
पूज्यश्री के चातुर्मास की सूचि

स्थल	वर्ष	कुल संख्या
अहमदाबाद	वि.सं. १९५३, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६७, ६८, ७०, ७५, ७७, ७९ ८०, ८३, ८६, ८७, २००१, २००२	सं. १९९२ अहमदाबाद १८
भावनगर	वि.सं. १९४५, ४६, ४७, ४८, ५९ ६४, ८९, ९४, ९७.	९
पालीताणा	वि.सं. १९४९, ९५	२
खंभात	वि.सं. १९५४, ५५, ६२, ६३, ७८, ८४, २०००	७
महुवा	वि.सं.१९५१, ६५, ८५, ९१, ९९ २००५.	६
बोटाद	वि.सं. १९६६, ८८, ९८	३
जामनगर	वि.सं. १९५०, ९३	२
वला	वि.सं. १९९६	१
जावाला	वि.सं. १९७१, ९०	२
सादडी	वि.सं. १९७२	१
फलोधी	वि.सं. १९७३	१
पाली	वि.सं. १९७४	१
उदयपुर	वि.सं. १९७६	१
कपडवंज	वि.सं. १९६९	१
वढवाण शहर	वि.सं. १९५२	१
वढवाण केम्प	वि.सं. २००४	१
साबरमती	वि.सं. २००३	१
पाटण	वि.सं. १९८२	१
चाणस्मा	वि.सं. १९८१	१
		६०

परिशिष्ट-२

पूज्यश्री की अमूल्य भेंट स्वरचित ग्रंथो की सूचि

अंक	ग्रंथ-नाम	विषय
१	परिहार्य मीमांसा (श्री सागरजी महाराज साथे)	डॉ. हर्मन जेकोबीने तेमना अयुक्त विधानोनो प्रत्युत्तर.
२.	बृहद् हेमप्रभा	हैम व्याकरण
३.	लधु हेमप्रभा	हैम व्याकरण
४.	परम लघुहेमप्रभा	हैम व्याकरण
५.	न्याय सिंधु	न्याय (पद्यबद्ध)
६.	न्यायालोक-तत्त्वप्रभा	न्याय (विवरण)
७.	न्याय खंडन खंड खाद्य न्याय प्रभा	न्याय (विवरण)
८.	प्रतिमा मार्तंड	न्याय (विवरण)
९.	अनेकान्त तत्त्वमीमांसा मूल तथा स्वोपज्ञ वृत्ति	
१०.	सप्तभंगी उपनिषत्	
११.	नयोपनिषत्	
१२.	सम्पतितर्क टीका पर विवरण	न्याय (विवरण)
१३.	अनेकान्त व्यवस्था-टीका	न्याय (विवरण)
१४.	रघुवंश-द्वितीय सर्गना २९ श्लोक पर अपूर्व टीका	काव्य (विवरण)

परिशिष्ट-३
पूज्यश्री की आदर्श श्रुतसेवा
(प्रकाशित-संशोधित किये हुए प्राचीन ग्रंथो की सूचि)

अंक	ग्रंथ-नाम
१.	सिद्धहेम बृहद्वृत्ति-लघुन्यासो द्वार समेत
२.	तत्त्वार्थाधिगमसूत्र-बृहट्टीका
३.	स्याद्वाद रत्नाकर
४.	न्याय खंडनखंड खाध
५.	न्यायालोक
६.	अष्टक प्रकरण-सटीक
७.	उपदेश रहस्य सटीक
८.	अनेकान्त जयपताका
९.	भाषारहस्य-स्वोपज्ञ विवरणयुक्त
१०.	प्रमाणमीमांसा
११.	प्रमालक्षण
१२.	अध्यात्म कल्पद्रुम
१३.	सम्मतितर्क प्रकरणवृत्ति
१४.	अनेकान्तव्यवस्था
१५.	ज्ञानार्णव-सविवरण
१६.	ज्ञानबिंदु-सविवरण
१७.	नयरहस्य
१८.	नयोपदेश
१९.	नयप्रदीप
२०.	सप्तभंगीप्रदीप
२१.	पातंजल योगदर्शन-विवृति
२२.	अष्टसहस्री विवरण

अंक	ग्रंथ-नाम
२३.	धर्मपरीक्षा-स्वोपज्ञ विवरणयुक्त
२४.	निशाभक्त दोष विवरण
२५.	वादमाला तथा उत्पादादि सिद्धि प्रकरण
२६.	योगविंशिका-वृत्ति सहित
२७.	कूप दृष्टान्तविंशदीकरण प्रकरण-सवृत्ति
२८.	योगदृष्टि समुच्चय-सविवरण
२९.	योगबिंदु समुच्चय-सविवरण
३०.	श्री हरिभद्रसूरिग्रंथ संग्रह १. योगदृष्टि समुच्चय, २. योगबिंदु, ३. शास्त्रवार्तासमुच्चय, ४. षड्दर्शन समुच्चय, ५. द्वात्रिंशद्दष्टक प्रकरण, ६. लोकतत्त्व निर्णय, ७. धर्मबिंदु प्रकरण ८. हिंसाफलाष्टक, ९. सर्वज्ञ सिद्धि.
३१.	प्राचीन स्तवनादि संग्रह
३२.	अध्यात्मसारादि
३३.	पारमर्ष स्वाध्याय संग्रह
३४.	संबोध प्रकरण

Pārśav International Series

१.	बारहक्खर - कक्क of महाचंद्र मुनि Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi	1997
२.	गाथामंजरी : Ed. H. C. Bhayani,	1998
३.	अणुपेहा Ed. Pritam Singhvi	1998
४.	अनेकान्तवाद : Pritam Singhvi	1999
५.	सदस्यवत्स - कथानकम् of Harsavardhanagani : Ed. Pritam Singhvi	1999
६.	आणंदा of आनंदतिलक : Ed. H. C. Bhayani, Pritam Singhvi	1999
७.	दोहापाहुड : Ed. H. C. Bhayani, R. M. Shah, Pritam singhvi	1999
८.	तरंगवती : Pritam singhvi (Tr.)	1999
९.	संप्रतिनृपचरित्रम् : संपादक : चतुरविजयमुनि.	1999
१०.	शासनसम्राट : जीवन परीचय हिन्दी अनु. : प्रीतम सिंघवी	1999

To be Shortly Published

(शीघ्र प्रकाश्यमान्)

११. उत्तराध्ययनादिगत जैन द्रष्टांतकथाएं : प्रीतम सिंघवी